# शिक्षक संदर्शिका

## प्रारम्भिक शिक्षा की समस्याएँ तथा अभिनव प्रवृत्तियाँ एवं शैक्षिक मूल्यांकन

चतुर्थ प्रश्न-पत्र

(बी० टी० सी० के नवीन संशोधित पाठ्यक्रमानुसार)

वर्ष 1981

NIEPA DC
D00350

राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

# प्राक्कथन

राष्ट्रीय विकास की धारा में शिक्षा विशेषतया प्राथमिक स्तरीय शिक्षा के स्तरोन्नयन एवं गुणात्मक विकास की महत्वपूर्ण समस्या के प्रति शिक्षा विभाग अधिक जागरूक एवं क्रियाशील है। एक सुविज्ञ, कुशल एवं प्रशिक्षित शिक्षक के द्वारा ही शिक्षा को मौलिक जीवन प्राप्त होता रहता है। फलस्वरूप शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों, विधाओं एवं कतिपय आधारभूत व्यावहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखकर नवीन संशोधित द्विवर्षीय बी0 टी0 सी0 पाठ्यक्रम को वर्ष 1980–81 से इस प्रदेश में प्रभावी किया गया है।

वस्तुतः प्रचलित पाठ्यक्रम के नवीन पक्षों तथा प्रशैक्षणिक तथ्यों से शिक्षक-प्रशिक्षक अवगत हो सकें और वे शिक्षा की अभिनव भूमिका के निर्वहन में अपेक्षाकृत अधिक कार्य-सक्षम बन सकें, इस आशय से संदर्भित पाठ्यक्रमाधारित प्रथम तथा द्वितीय वर्ष विषयक समस्त पाचों प्रश्न-पत्रों से सम्बन्धित संदर्शिकाओं का अलग-अलग निर्माण किया गया है।

यह विशेष रूप से विचारणीय है कि इस प्रस्तुत संदर्शिका में प्रशिक्षण विज्ञान (सैद्धान्तिक) के अन्तर्गत चतुर्थ प्रश्न-पत्र 'प्रारंभिक शिक्षा की समस्यायें तथा अभिनव प्रवृत्तियां एवं शैक्षिक मूल्यांकन' (द्वितीय वर्ष) के परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय प्रकरणों पर प्रकाश डाला गया है यथा— नवीन विकसित समाज के परिवेश में शिक्षा की अभिनव प्रवृत्तियों तथा सुधार योजनाओं के लक्ष्य एवं स्वरूप का परिचय, नवीन शिक्षण विधियों की आवश्यकता, उपयोगिता एवं कार्यान्वयन पद्धति से परिचय तथा शैक्षिक परियोजनाओं के स्वरूप का ज्ञान, शैक्षिक संकल्पनाओं की मुख्य भूमिका एवं व्यावहारिकता का परिचय और शैक्षिक मूल्यांकन की विधियों, साधनों तथा परीक्षण सम्बन्धी उपयोगी तथ्यों का बोध, प्रारम्भिक शिक्षा की वर्तमान समस्याओं तथा उनके निदानार्थ किये जा रहे प्रयत्न।

इस संदर्शिका के सृजन हेतु दो कार्यशालायें आयोजित की गईं, जिसमें राज्य शिक्षा संस्थान, इलाहाबाद तथा अन्य शिक्षण संस्थाओं के प्रबुद्ध सदस्यगण ने सराहनीय योगदान किया है। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूं।

यह संदर्शिका मात्र दिशा निर्देशन करती है न कि दिशाओं को बांधती है। इसके सुधार हेतु शिक्षक-प्रशिक्षकों एवं शिक्षाविदों से प्राप्त सुझावों का स्वागत किया जायेगा।

पृथ्वी राज चौहान,

दिनांक : 10–9–81

शिक्षा निदेशक,

उत्तर प्रदेश।

पृ0
क
1
2–3
4–7
7–10
10–13
13–21
21–24
24–26
26–29
30–32
33
33–36
36–38
39
39–40
40–42
43
43–44
44–45
46–47
48
49
49
49
49–51
51–56

विषय पृष्ठ सं0

खण्ड (क)


| | |
|---|---|
| प्राथमिक शिक्षा की समस्याएं— | क |
| 1—शिक्षा का सार्वजनीकरण— .. | 1 |
| (क) अनिवार्य शिक्षा .. | 2—3 |
| (ख) ह्रास-अवरोध .. | 4—7 |
| (ग) निर्बल एवं अपवंचित वर्ग की शिक्षा .. | 7—10 |
| (घ) बालिका-शिक्षा .. | 10—13 |
| (ङ) समस्या मूलक बालक .. | 13—21 |
| (च) अनौपचारिक शिक्षा .. | 21—24 |
| (छ) प्रौढ़ एवं सामुदायिक शिक्षा .. | 24—26 |
| (ज) विज्ञान शिक्षा .. | 26—29 |
| (झ) स्वास्थ्य एवं पोषण .. | 30—32 |
| 2—राष्ट्रीय भावात्मक एकता— .. | 33 |
| (क) राष्ट्रीय भावात्मक एकता का अर्थ, ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, समस्या आदि .. | 33—36 |
| (ख) नैतिक शिक्षा .. | 36—38 |
| 3—विद्यालय स्तरीय समस्याएं— .. | 39 |
| (क) भौतिक समस्याएं .. | 39—40 |
| (ख) छात्र अनुशासन की समस्या .. | 40—42 |
| 4—प्रशासनिक समस्या— | 43 |
| (क) छात्र-अध्यापक अनुपात का असंतुलन .. | 43—44 |
| (ख) बहुकक्षा शिक्षण एवं वृहत कक्षा शिक्षण .. | 44—45 |
| (ग) निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण .. | 46—47 |
| (घ) अध्यापक पर अन्य प्रकार का भार .. | 48 |
| 5—शिक्षक-प्रशिक्षण— | 49 |
| (क) प्रशिक्षण की भूमिका .. | 49 |
| (ख) प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थिति .. | 49 |
| (ग) प्रशिक्षण का वर्तमान स्वरूप एवं आवश्यकता . | 49—51 |
| (घ) विभिन्न संस्थानों की स्थिति, कार्य एवं दायित्व .. | 51—56 |

| विषय | | पृष्ठ सं0 |
|---|---|---|
| 8—शैक्षिक संकल्पनायें एवं सुधार योजनाएं— | .. | 56 |
| (क) प्राथमिक स्तर का पाठ्य क्रम का सुधार एवं पठन सामग्री की संरचना | .. | 56–58 |
| (ख) न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम | .. | 58–59 |
| (ग) परिवेशीय अध्ययन | .. | 59–62 |
| (घ) समाजोपयोगी उत्पादक कार्य | .. | 63 |
| (ङ) जनसंख्या–शिक्षा | .. | 63–66 |
| (च) अधिगम संस्थितियां–अधिगम सिद्धान्त | .. | 66–70 |
| (छ) शिक्षा प्रौद्योगिकी और उसका उपयोग | .. | 70–74 |
| अभिनव प्रवृत्तियां | .. | 74–76 |
| खण्ड (ख) | .. | ख |
| शैक्षिक मूल्यांकन— | | 79 |
| 1—शैक्षिक मूल्यांकन एवं मापन का अर्थ, पृष्ठभूमि, परीक्षण और मापन की आवश्यकता | .. | 79–81 |
| 2—शैक्षिक मूल्यांकन के विभिन्न सोपान | .. | 82–83 |
| 3—शैक्षिक मूल्यांकन पक्ष | .. | 84–87 |
| 4—शैक्षिक मूल्यांकन के साधन | .. | 88–91 |
| 5—अच्छे परीक्षण के गुण | .. | 92–94 |
| 6—अच्छे प्रश्नों के गुण | .. | 95–100 |

# खण्ड—क

# प्राथमिक शिक्षा की समस्याएं

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration,
17-B,SriAurbindo Marg,NewDelhi-110016
DOC. No.....
Date.....

# 1--शिक्षा का सार्वजनीकरण

आवश्यकता--

शिक्षा प्रत्येक बालक बालिका की बुनियादी आवश्यकता है। कोई भी देश सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टिकोण से तभी प्रगति कर सकता है जब उस देश की जनता शिक्षित हो और उन्हें अपने कर्तव्यों का बोध हो। देश के विकास कार्यों में भी एक शिक्षित नागरिक ही अपना योगदान दे सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश के सभी बालक बालिकाएं कम से कम प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करें। अतः देश की परिस्थितियों को देखते हुये यह आवश्यक था कि प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण कर उसे अनिवार्य बना दिया जाय।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि--

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का संबोध हमारे देश में उतना ही पुराना है जितनी हमारी सभ्यता। वैदिक काल में आर्यों ने सभी बालक बालिकाओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था की थी पर इसका आधार कानून न हो कर धर्म था। बालक बालिकाओं की शिक्षा "उप-नयन" संस्कार के साथ-साथ प्रारम्भ होती थी। यह आठ वर्ष की आयु में होता था जिसके द्वारा वह गुरु के घर में प्रवेश पाता था। गुरु के गृह में शिक्षार्थी के रूप में लम्बी अवधि तक रह कर सादा और परिश्रम का जीवन बिताता था। विद्या ग्रहण करने की अवधि 16 वर्ष तथा अक्सर 24 वर्ष तक होती थी। आज के युग के समय में हम देखें तो यह शैक्षिक व्यवस्था कम से कम आठ साल की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा थी। यह शिक्षा आर्यों में सार्वजनिक ही थी। पर दुर्भाग्यवश भविष्य के सामाजिक परिवर्तनों के साथ यह लुप्त हो गई।

मध्यकालीन मुसलमानों के युग में दूसरी प्रकार की प्राथमिक शिक्षा देश में आई। इस समय भी दो प्रकार के विद्यालय थे 'मकतब' हिन्दू प्राथमिक विद्यालयों के समकक्ष थे तथा ये मस्जिदों से संलग्न रह कर बालक बालिकाओं को पढ़ना-लिखना सिखाते थे विशेषकर कुरान पढ़ना।

मध्य युग में हिन्दू तथा मुस्लिम प्राइमरी पाठशालाएं साथ-साथ चलती थीं और ये 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक विद्यमान थीं।

हमारी आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की नींव ब्रिटिश राज्य द्वारा पड़ी। उसका विकास ब्रिटिश प्रशासनों ने किया था।

1 व 2 का वर्ष प्राथमिक शिक्षा के विकास के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण है। तभी से प्राथमिक शिक्षा का प्रसार व विस्तार होता चला गया।

पिछले 100 वर्षों से भारतीय के हृदय में प्राथमिक-शिक्षा के सार्वजनीकरण की आकांक्षा बनी चली आ रही है। यह लहर सर्व प्रथम 1870 में उठी थी तथा 1907 में गोपाल कृष्ण गोखले ने इसका प्रस्ताव तत्कालीन विधान परिषद् के समक्ष रक्खा था। इसके बाद अनेक भारतीयों ने इस दिशा में प्रयत्न किये।

स्वतन्त्रता के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य तथा निः-शुल्क बनाने का निश्चय किया। 1950 में भारतीय संविधान के नीति निर्देश तत्व वाले खण्ड की 45वीं धारा में 10 वर्ष के भीतर 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बालक बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा देने का प्राविधान किया था। पिछले तीस वर्षों से हमारा राष्ट्र इस दिशा में प्रयत्नशील है।

अनिवार्य शिक्षा की समस्यायें--

अनिवार्य शिक्षा का तात्पर्य है कि 6 से 14 वयवर्ग के सभी बालक बालिकाएं अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करें। अनिवार्य शिक्षा होने के अन्तर्गत मुख्य तीन तत्व आयेंगे :

1--समस्त बालक बालिकाओं के लिए विद्यालय का उपलब्ध होना।

2--सार्वजनिक नामांकन।

3--सार्वजनिक धारणा अर्थात् जो बालक विद्यालय में प्रवेश ले प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करें।

संविधान की 45वीं धारा के अनुसार 1960 तक प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण पूर्ण हो जाना चाहिए था पर कार्य की विशालता तथा उसके लिए आवश्यक साधनों की कमी के कारण हम इस संवैधानिक दायित्व को पूरा नहीं कर पाये हैं। इसीलिए 14 वर्ष तक के सभी बालक बालिकाओं को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने के लक्ष्य को दो चरणों में पूरा करने का निश्चय किया गया है। प्रथम चरण में 11 वर्ष तक के वयवर्ग के बालकों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा दी जायेगी और दूसरे चरण में 14 वर्ष के वय वर्ग के बच्चों को शिक्षा दी जायेगी।

राष्ट्र ने इस दिशा में अनेक प्रयास किये हैं। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण स्वतन्त्रता के बाद की नामांकन संख्या का बढ़ना है जो हर पंचवर्षीय योजना से बढ़ता गया है। फिर भी हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंचे हैं क्योंकि लक्ष्य प्राप्ति में अनेक बधायें हैं वे समस्यायें कई प्रकार की हैं, जैसे आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, शैक्षिक आदि।

हमारा देश आज भी बेहद गरीब है आज भी 60 प्रतिशत लोग दो वक्त का भोजन की प्रबन्ध करने में असमर्थ हैं। परिवार के जितने सदस्य हैं सभी मेहनत मजदूरी करते हैं तभी निर्वाह होता है, अतः बच्चों को विद्यालय भेजने का प्रश्न नहीं है।

सामाजिक--अभिभावक स्वयं निरक्षर हैं, वे शिक्षा के महत्व को समझते नहीं हैं, अनेक सामाजिक कुंठाएं हैं, जो बच्चों को विद्यालय जाने से रोकती हैं।

शैक्षिक--हमारे अधिकांश विद्यालय आज भी भौतिक तथा शैक्षिक दृष्टि से इतने आकर्षक नहीं हैं कि बच्चों को विद्यालय की ओर खींच सकें।

अध्यापकों में न वह योग्यता है और न अपने कार्य की ओर इतनी निष्ठा है कि वे बालक को प्रेरित कर सकें।

## प्रगति-स्थिति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की दिशा में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। शैक्षिक सर्वेक्षणों द्वारा शैक्षिक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर भीतरी से भीतरी गांवों में क्षेत्रीय जनसंख्या के अनुसार हजारों विद्यालय खोले गये हैं। अनेक शैक्षिक योजनाओं तथा नामांकन अभियानों द्वारा बालक बालिकाओं को विद्यालयों में लाया गया है। पंचवर्षीय योजनाओं के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि हर योजना में प्राथमिक शिक्षा का आर्थिक प्रविधान बढ़ाया गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कुछ महत्व पूर्ण कार्यों का विवरणनिम्नवत् है :--

1--बेसिक शिक्षा प्रणाली को प्राथमिक शिक्षा स्तर पर अपनाना।

2--शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार।

3--पाठ्यक्रम का विकास।

4--प्रगतिशील उन्नत शिक्षण विधियों का प्रयोग।

5--सहायक सेवाएं--बालाहार योजना, चिकित्सीय सेवा, उपचार की सुविधा, मुफ्त दवाइयों का वितरण।

6--समुदाय तथा विद्यालय का निकट सम्पर्क-समुदाय का सहयोग।

7--शिक्षकों के वेतन-क्रम में वृद्धि।

8--ह्रास अवरोध के प्रतिशत में कमी।

9--प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम की व्यवस्था।

उपर्युक्त कुछ समस्याओं के समाधान हेतु ही अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था का प्रारम्भ किया गया। जो बच्चे औपचारिक विद्यालयों का लाभ नहीं उठा सकते उन्हें अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम में पढ़ने का अवसर दिया जा रहा है। फिर भी हम अभी अपने लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं और 1971 के सर्वेक्षण के अनुसार भारत का साक्षरता प्रतिशत 1·45 प्रतिशत है तथा उत्तर प्रदेश का केवल 22 प्रतिशत है।

## विषयगत समस्याओं को हल करने के सुझाव

उपर्युक्त स्थिति को देखते हुए प्रश्न यह उठता है कि हम अपनी समस्याओं का समाधान करने में क्यों असमर्थ रहे हैं। स्थिति का विश्लेषण करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि समस्याओं को सुलझाने का हमारा ढंग या उपागम कुछ त्रुटि पूर्ण है। हमें अपनी कार्य नीति बदलने की आवश्यकता है समस्याओं को सुलझाने के कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं :

1--प्राइमरी शिक्षा का कार्यक्रम जनशिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम के साथ ही साथ चलना चाहिए। जब तक प्रौढ़ शिक्षित न होंगे वे अपने बच्चों को विद्यालय न भेजेंगे।

2--आम जनता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर परिवार नियोजन के महत्व का बोध कराना। इस कार्यक्रम का स्वयं में महत्व है ही पर प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में इसका भारी योगदान हो सकता है।

3--हमें प्राइमरी शिक्षा की समस्याओं के निदान के लिए एक जनअभियान चलाना चाहिए। इस प्रोग्राम को क्रैश कार्यक्रम के रूप में आयोजित करना चाहिए।

4--गरीब व अपवंचित वर्ग के बच्चों के लिए अंशकालिक शिक्षा का प्राविधान होना चाहिए। तत्कालीन अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का संचालन तथा आयोजन एक व्यावहारिक तथा ठोस धरातल पर करना चाहिए।

आर्थिक दृष्टिकोण से भी यह कार्यक्रम धन की बचत ही करेंगे। जितना धन का अपव्यय ह्रास एवं अवरोध के कारण होता है, उससे कम धन में प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम चलाया जा सकता है। प्रौढ़ शिक्षा की सफलता होने पर बहुत सी समस्याएं स्वतः ही सुलझ जायेंगी।

शिक्षण विधि--

व्याख्यान प्रणाली तथा प्रश्नोत्तर प्रणाली का प्रयोग होना उचित होगा।

मूल्यांकन--

लघु एवं दीर्घ दोनों प्रकार के प्रश्न प्रयोग करना होंगे।

**अनिवार्य शिक्षा की समस्यायें—**

अनिवार्य शिक्षा का तात्पर्य है कि 6 से 14 वयवर्ग के सभी बालक बालिकाएं अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करें। अनिवार्य शिक्षा होने के अन्तर्गत मुख्य तीन तत्व आयेंगे :

1—समस्त बालक बालिकाओं के लिए विद्यालय का उपलब्ध होना।

2—सार्वजनिक नामांकन।

3—सार्वजनिक धारणा: अर्थात् जो बालक विद्यालय में प्रवेश ले प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करें।

संविधान की 45वीं धारा के अनुसार 1960 तक प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण पूर्ण हो जाना चाहिए था पर कार्य की विशालता तथा उसके किए आवश्यक साधनों की कमी के कारण हम इस संवैधानिक दायित्व को पूरा नहीं कर पाये हैं। इसीलिए 14 वर्ष तक के सभी बालक बालिकाओं को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने के लक्ष्य को दो चरणों में पूरा करने का निश्चय किया गया है। प्रथम चरण में 11 वर्ष तक के वयवर्ग के बालकों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा दी जायेगी और दूसरे चरण में 14 वर्ष के वय वर्ग के बच्चों को शिक्षा दी जायेगी।

राष्ट्र ने इस दिशा में अनेक प्रयास किये हैं। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण स्वतन्त्रता के बाद की नामांकन संख्या का बढ़ना है जो हर पंचवर्षीय योजना से बढ़ता गया है। फिर भी हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंचे हैं क्योंकि लक्ष्य प्राप्ति में अनेक बधायें हैं ये समस्यायें कई प्रकार की हैं, जैसे आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, शैक्षिक आदि।

हमारा देश आज भी बेहद गरीब है आज भी 60 प्रतिशत लोग दो वक्त का भोजन का प्रबन्ध करने में असमर्थ हैं। परिवार के जितने सदस्य हैं सभी मेहनत मजदूरी करते हैं तभी निर्वाह होता है, अतः बच्चों को विद्यालय भेजने का प्रश्न नहीं है।

सामाजिक—अभिभावक स्वयं निरक्षर हैं, वे शिक्षा के महत्व को समझते नहीं हैं, अनेक सामाजिक कुंठाएं हैं, जो बच्चों को विद्यालय जाने से रोकती हैं।

शैक्षिक—हमारे अधिकांश विद्यालय आज भी भौतिक तथा शैक्षिक दृष्टि से इतने आकर्षक नहीं हैं कि बच्चों को विद्यालय की ओर खींच सकें।

अध्यापकों में न वह योग्यता है और न अपने कार्य की ओर इतनी निष्ठा है कि वे बालक को प्रेरित कर सकें।

### प्रगति–स्थिति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की दिशा में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। शैक्षिक सर्वेक्षणों द्वारा शैक्षिक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर भीतरी से भीतरी गांवों में क्षेत्रीय जनसंख्या के अनुसार हजारों विद्यालय खोले गये हैं। अनेक शैक्षिक योजनाओं तथा नामांकन अभियानों द्वारा बालक बालिकाओं को विद्यालयों में लाया गया है। पंचवर्षीय योजनाओं के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि हर योजना में प्राथमिक शिक्षा का आर्थिक प्राविधान बढ़ाया गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कुछ महत्व पूर्ण कार्यों का विवरण निम्नवत् है :—

1—बेसिक शिक्षा प्रणाली को प्राथमिक शिक्षा स्तर पर अपनाना।

2—शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार।

3—पाठ्यक्रम का विकास।

4—प्रगतिशील उन्नत शिक्षण विधियों का प्रयोग।

5--सहायक सेवाएं—बालाहार योजना, चिकित्सीय सेवा, उपचार की सुविधा, मुफ्त दवाइयों का वितरण।

6--समुदाय तथा विद्यालय का निकट सम्पर्क–समुदाय का सहयोग।

7--शिक्षकों के वेतन–क्रम में वृद्धि।

8--ह्रास अवरोध के प्रतिशत में कमी।

9--प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम की व्यवस्था।

उपर्युक्त कुछ समस्याओं के समाधान हेतु ही अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था का प्रारम्भ किया गया। जो बच्चे औपचारिक विद्यालयों का लाभ नहीं उठा सकते उन्हें अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम में पढ़ने का अवसर दिया जा रहा है। फिर भी हम अभी अपने लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं और 1971 के सर्वेक्षण के अनुसार भारत का साक्षरता प्रतिशत 1·45 प्रतिशत है तथा उत्तर प्रदेश का केवल 22 प्रतिशत है।

## विषयगत समस्याओं को हल करने के सुझाव

उपर्युक्त स्थिति को देखते हुए प्रश्न यह उठता है कि हम अपनी समस्याओं का समाधान करने में क्यों असमर्थ रहे हैं। स्थिति का विश्लेषण करने से हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि समस्याओं को सुलझाने का हमारा ढंग या उपागम कुछ त्रुटि पूर्ण है। हमें अपनी कार्य नीति बदलने की आवश्यकता है समस्याओं को सुलझाने के कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं :

1--प्राइमरी शिक्षा का कार्यक्रम जनशिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम के साथ ही साथ चलना चाहिए। जब तक प्रौढ़ शिक्षित न होंगे वे अपने बच्चों को विद्यालय न भेजेंगे।

2--आम जनता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर परिवार नियोजन के महत्व का बोध कराना। इस कार्यक्रम का स्वयं में महत्व है ही पर प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में इसका भारी योगदान हो सकता है।

3--हमें प्राइमरी शिक्षा की समस्याओं के निदान के लिए एक जनअभियान चलाना चाहिए। इस प्रोग्राम को क्रैश कार्यक्रम के रूप में आयोजित करना चाहिए।

4--गरीब व अपवंचित वर्ग के बच्चों के लिए अंशकालिक शिक्षा का प्राविधान होना चाहिए। तत्कालीन अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का संचालन तथा आयोजन एक व्यावहारिक तथा ठोस धरातल पर करना चाहिए।

आर्थिक दृष्टिकोण से भी यह कार्यक्रम धन की बचत ही करेंगे। जितना धन का अपव्यय ह्रास एवं अवरोध के कारण होता है, उससे कम धन में प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम चलाया जा सकता है। प्रौढ़ शिक्षा की सफलता होने पर बहुत सी समस्याएं स्वतः ही सुलझ जायेंगी।

शिक्षण विधि--

व्याख्यान प्रणाली तथा प्रश्नोत्तर प्रणाली का प्रयोग होना उचित होगा।

मूल्यांकन--

लघु एवं दीर्घ दोनों प्रकार के प्रश्न प्रयोग करना होंगे।

## ह्रास अवरोध

शिक्षक को निर्देश--

इसके पूर्व की इकाई शिक्षा के सार्वजनीकरण में विद्यार्थी इसकी समस्याओं का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। ह्रास एवं अवरोध प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के रास्ते में एक भारी रुकावट है और पिछली इकाई की समस्याओं से सम्बन्धित है। अतः इस इकाई को पिछली इकाई के परिपेक्ष्य में पढ़ना उचित होगा।

परिभाषा--

पिछली इकाई में यह बताया जा चुका है कि भारतीय संविधान की 45वीं धारा के अनुसार 14 वर्ष के आयु के सभी बालक बालिकाओं को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा दी जायेगी। इस लक्ष्य प्राप्ति में दो तथ्य निहित हैं।

(1) हर बच्चे को निर्धारित आयु पर कक्षा 1 में भर्ती की जानी चाहिए।

(2) हर बच्चा जो कक्षा 1 में भर्ती हो प्रति वर्ष कक्षा उत्तीर्ण करे और उस समय तक विद्यालय न छोड़े जब तक प्राथमिक शिक्षा पूर्ण न हो।

अतः ह्रास की परिभाषा प्राथमिक शिक्षा के न्यूनतम लक्ष्य पर निर्भर है। यदि हमारा लक्ष्य 5 से 11 तक के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देना है तो कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाला जो भी छात्र कक्षा 5 पूर्ण किये बिना विद्यालय छोड़ देता है वह ह्रास के अन्तर्गत आ जायेगा तथा जो बच्चा एक ही कक्षा में बार-बार फल होगा उसे अवरोध ग्रस्त कहा जाएगा।

ह्रास अवरोध के कारण--

अनिवार्य शिक्षा की समस्याओं में इन कारणों पर विचार किया जा चुका है अतः उन्हें यहाँ इंगित मात्र किया जा रहा है। ये कारण सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, वैयक्तिक, प्रशासनिक हैं।

सामाजिक--इसमें विशेष रूप से बालिकाओं का ह्रास आ जायेगा--आज भी गांवों में ऐसी परम्पराएं चली आ रही हैं जिसके अनुसार बालिकाओं का पढ़ना व्यर्थ समझा जाता है। छोटी अवस्था में ही उन्हे ब्याह देते हैं। कुमारी लड़कियां घर का काम काज करती हैं और छोटे भाई बहनों की देख-रेख करती हैं।

आर्थिक कारण--यह सबसे महत्वपूर्ण है। आज भी देहातों में इतनी गरीबी है कि परिवार के बच्चें भी मजदूरी तथा कोई काम करके घर की आमदनी में योगदान देते हैं। खेतों पर भी काम करते हैं। अतः उनका विद्यालय जाना कठिन होता है।

शारीरिक-वैयक्तिक--कभी कुछ व्यक्तिगत पारिवारिक कारण भी होते हैं जैसे परिवार में पिता की छात्र छाया न होना, जिसके कारण पूरा भार बच्चों को ढोना पड़ता है। अथवा दुर्बल स्वास्थ्य होने के कारण बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते।

प्रशासनिक कारण--विद्यालय की भौतिक दशा, टाट पट्टी की कमी तथा श्रव्य-दृश्य सामग्री का अभाव।

अध्यापकों में निष्ठा का अभाव, नियमित समय से विद्यालय न जाना--ये सभी ऐसी स्थितियां है जिन पर प्रधानाध्यापक का कोई प्रशासनिक नियंत्रण नहीं है। फिर भी ये चीजें ह्रास/अवरोध बढ़ाने में सहायक होती हैं।

ग--प्रयोग एवं सुझाव--

ह्रास एवं अवरोध निवारण शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए अति आवश्यक है। इस पर पिछले 50 वर्षों से विचार विमर्श हो रहा है इसके क्या कारण है, इसका मापन ा जाए, इसके निवारण हेतु कौन की विधियां अपनाई जाएं इन पर निरन्तर विचार, ा परीक्षण हो रहा है।

ि में ह्रास कम करने के कुछ सुझाव--

स्कूलों के समय व छुट्टियों का समायोजन--बच्चे खेतों में या घरों में मां-बाप की करते हैं इस लिए स्कूल छोड़ देते हैं। अतः विद्यालय का समय उनकी सुविधानुसार ित कर देना चाहिए।

अभिभावकों को बच्चों की शिक्षा में रुचि लेने के लिए प्रेरित करना--इसके लिए माता सम्पर्क तथा स्थानीय सम्मानित व्यक्तियों का सहयोग लेना चाहिये, जिससे माता-पिता ता बूझा कर उन्हें अपने बच्चों की शिक्षा में अभिरुचि पैदा की जा सके।
ों की धारण क्षमता बढ़ाना :--

(अ) विद्यालय की भौतिक रूप सुधारना।

(ब) स्कूल में सफाई रखना।

(स) पाठ्येत्तर कार्य-कलापों का आयोजन।

(द) चिकित्सा सुविधा प्रदान करना।

(य) मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था करना।

(र) शिक्षण स्तर के सुधार हेतु अध्यापकों के ज्ञान को नवीनतम रखना।

उपर्युक्त सभी कारण विद्यालय की धारण क्षमता को बढ़ाते हैं।

प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को अधिक प्रभावशाली तथा व्यवहार स्तर पर आयोजित करना--प्रौढ़ अशिक्षित रहेंगे वे बच्चों को विद्यालय नहीं भेजेंगे अनौपचारिक केन्द्रों का अधिक त व्यवस्था (अ) शिक्षकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण-योग्यता बढ़ाने हेतु। वेतन क्रम तथा में सुधार।

ार्थ--

शंकरगढ़ में चलाई गई योजना का संक्षिप्त विवरण।

उत्तर प्रदेश में ह्रास अवरोध की शोचनीय स्थिति देखते हुए शंकर गढ़ क्षेत्र में एक ह्रास/निवारण योजना कार्यान्वित की गई। शासन स्तर पर यह निर्णय होने के बाद योजना त शंकरगढ़ क्षेत्र चुना गया :

1--सर्व प्रथम राज्य शिक्षा संस्थान तथा केन्द्रीय निरीक्षण अधिकारियों के निर्देशन में सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण किया गया।

2 --सर्वेक्षण हेतु कुछ प्रारूप तैयार किये गये जैसे :

(क) कक्षा 1 से 5 तक कुल छात्रों के शैक्षिक हा। की तालिका 1970-71 से 1974-75 तक।

3--वर्तमान अर्थात् 31-12-75 को अवरोध की स्थिति।

4--1970-71 को आधार वर्ष मान कर उस वर्ष में प्रविष्ट छात्रों की संख्या ज्ञात की गई।

5—1970-71 से 1974-75 तक विभिन्न वर्षों में हुए ह्रास अवरोध तालिका बनाई गई।

6—1970-71 से 1974-75 अर्थात् पांच वर्षों के उपरान्त कक्षा 5 में छात्रों की संख्या ज्ञात कर उस वर्ष तक की विद्यालयों की धारण क्षमता ज्ञानी इन तालिकाओं का विश्लेषण कर तत्कालीन स्थिति को समझने का प्रयत्न किया

ह्रास/अवरोध के कारणों की जानकारी हेतु एक विस्तृत प्रश्नावली चयन किं विद्यालयों को दी गई तथा इनके माध्यम से प्राथमिकता के आधार पर कारकों की जा को गई।

तत्पश्चात् क्षेत्र के जन समुदाय को योजना के उद्देश्यों से परिचित कराने हेतु तथा रुचि उत्पन्न करने तथा योजना में विश्वास दिलाने हेतु व्यापक जन सम्पर्क स किया गया।

इन जन सम्पर्क के कार्यों में क्षेत्र के सभी लोग पुरुष, महिला, बच्चे सम्मिलित फिर एक विस्तृत समय बद्ध योजना तैयार की गई।

कार्यक्रम के मुख्य चिह्न :—

1—जन सम्पर्क तथा जनमत तैयार करना तथा ह्रास/अवरोध सम्बन्धी आयोजित करना।

2—मूल्यांकन की नवीन विधियों से शिक्षकों को परिचित कराना।

3—संस्थागत नियोजन।

4—स्वास्थ्य सेवा तथा मध्याह्न जलपान व्यवस्था इस समय इस कार्यक्र

विद्यालय संकुलों द्वारा कार्यान्वित किया गया।

संकुल की स्थापना—

संक्षेप में संकुल का तात्पर्य यह है कि एक ऊंचे स्तर का विद्यालय पड़ोसा तथा पास के कुछ नीचे स्तर के विद्यालयों से समानता के आधार पर संलग्न होकर अपने म तथा शैक्षिक साधनों का आदान-प्रदान कर एक दूसरे को लाभान्वित करता है। उसे वि संकुल कहते हैं। क्षेत्र में चार विद्यालय संकुलों का संगठन किया गया। विकास क्षेत्र के जूनियर बेसिक विद्यालयों को केन्द्रीय विद्यालय मानकर क्षेत्र के समस्त प्राथमिक विद्यालयों को के संकुल से सम्बद्ध कर दिया गया। प्रत्येक संकुल में लगभग 20 विद्यालय थे। केन्द्रीय वि संलग्न विद्यालयों का नेतृत्व करते थे, विद्यालयों की ह्रास/अवरोध सम्बन्धी सूचनाओं रेकार्ड रखते थे तथा संस्थान व केन्द्रीय अधिकारियों के बीच कड़ी का काम करते थे।

प्रत्येक संकुल की बैठक माह में एक बार एक पूर्व निश्चित स्थान व विद्या आयोजित होती थी और बैठक का स्थान बदलता रहता था। बैठकों में संकुल के समस्त प्र व्यापकों ग्राम प्रधान तथा जन प्रतिनिधि के बीच अधिकारी सम्मिलित होते थे। बैठकों का दर्शन संस्थान के सम्बन्धित अधिकारी करते थे। समय की आवश्यकता तथा अनुभव के पर कार्य तिथियों में संशोधन होता रहता था।

बैठकों में कार्य के मुख्य बिन्दु ये थे :—

1—बालगणना हेतु सेवित क्षेत्र का निर्धारण ।

2—प्रत्येक विद्यालय का प्रवेश लक्ष्य निर्धारित करना ।

3—ह्रास अवरोध ग्रस्त बालकों का अभिलेख रखना ।

4—ह्रास/अवरोध निवारण कार्यक्रमों का आयोजन ।

5—शिक्षण उन्नयन के कार्यक्रम का आयोजन ।

6—कुशल शिक्षकों द्वारा आदर्श पाठ ।

7—अन्तर विद्यालयी प्रतियोगिता आयोजित करना ।

समस्त योजना का मासिक त्रैमासिक आख्या के आधार पर हर वर्ष की प्रगति का रख अपने कार्य का मूल्यांकन किया जाता था ।

ण विधि—

इस इकाई को पढ़ाने में व्याख्यान प्रणाली तथा प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग उचित ।

क्रम—

लघु प्रश्न तथा दीर्घ प्रश्न दोनों का प्रयोग करना होगा ।

---

## निर्बल एवं अपवंचित वर्ग की शिक्षा

कों को निर्देश—

इस वर्ग की शिक्षा भी अनिवार्य शिक्षा की एक समस्या है । जब हम प्राथमिक शिक्षा 6–14 वय वर्ग के बच्चों के लिये अनिवार्य बनाना चाहते हैं तो हम अपने समाज के ल तथा अपवंचित वर्ग को छोड़ नहीं सकते । उन्हें शिक्षित करना भी राष्ट्र का कर्त्तव्य इस तथ्य को ध्यान में रख कर इस वर्ग की शिक्षा की बात शिक्षार्थी के सम्मुख रखिये ।

प्रस्तावना—आधुनिक सभ्य समाज से दूर घने वनों, पर्वतीय तथा पठारी प्रदेशों में की जीवन व्यतीत करने वाले लोग सदा से ही उपेक्षित रहे हैं । स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय ार ने इन उपेक्षित समाज के लोगों के उत्थान के लिये विशेष सुविधाओं का प्राविधान । सरकार ने इन्हें अनुसूचित जनजाति के नाम से सम्बोधित किया ।

विश्व में अफ्रीका छोड़कर भारत में ही ऐसे वर्ग के लोगों की संख्या सबसे अधिक है । 1 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या 3·8 करोड़ थी । जनजाति के लोग विकास के ों से गुजर रहे हैं । भौगोलिक परिस्थितियों के कारण निर्धनता इनको धरोहर के रूप में हैं । पर्वतीय भाग तथा जंगलों में रहने के कारण ये लोग बहुत पिछड़े हुये है । अतः शिक्षित कर सभ्य बनाना राष्ट्र के हित में है ।

संविधान और जन जातियां—स्वाधीन भारत में सरकार ने पिछड़े वर्ग के लोगों को ान में संरक्षण प्रदान करके उनके विकास के लिये विशेष प्रयत्न प्रारम्भ किये ।

जन जाति के लोगों के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखते संविधान में इस वर्ग के लोगों को भारतीय नागरिकों को उपलब्ध अधिकारों का उपयोग तथा सामाजिक अयोग्यताओं को दूर करने के लिये विशेष संरक्षण प्रदान किया है । ण प्रदान करने वाले अनुच्छेद निम्न हैं ।

अनुच्छेद 46—"उनको शैक्षिक और आर्थिक रुचियों को प्रोत्साहन देना तथा सा अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से सुरक्षा प्रदान करना ।"

अनुच्छेद 16 और 335—"राजकीय सेवाओं में नियुक्ति के लिये उनके अधि राज्य को विचार करना और अपर्याप्त प्रतिनिधित्व की स्थिति में उनके लि सुरक्षित रखना" ।

पंचवर्षीय योजनाओं में उनके आर्थिक विकास एवं शिक्षा के लिये विशेष प्र रखा गया । इनकी शिक्षा के लिये अधिकांश कार्यक्रम शिक्षा अनुभाग के अन्तर्गत रखे गा अनुसूची कार्यक्रम को पिछड़े वर्ग के अनुदान में रखा गया ।

जन जाति में शिक्षा प्रसार के लिये केन्द्र तथा राज्य दोनों प्रयत्नशील हैं । अन्तर्गत छात्रवृत्तियां और छात्रावास हैं तथा राज्य के कार्यक्रम छात्रवृत्तियां, निःशुल्क लिखने की सामग्री, परीक्षा-शिक्षण शुल्क तथा आश्रम स्कूल सम्मिलित हैं । जन जा शिक्षा में प्रगति हुई है फिर भी वे अभी बहुत पीछे हैं । जन जाति की शिक्षा की अधिक संतोषजनक स्थिति प्राथमिक स्तर पर रही है ।

अनुसूचित एवं पिछड़े वर्ग की शिक्षा—

भारत में जातियां कुछ विशिष्ट व्यवसायों से जुड़ी रही हैं । कुछ व्यवसाय निम्न के माने गये हैं और जिन लोगों ने इन व्यवसायों को अपनाया वे भी निम्नश्रेणी के मा हैं । स्थिति यहां तक पहुंची कि इनको स्पर्श करना भी बुरा समझा जाने लगा । लोगों की एक श्रेणी अनुसूचित जाति बन गई ।

"पिछड़ा वर्ग" एक विवादास्पद शब्द है । इसकी व्याख्या करना एक कठिन समस पिछड़ापन कई दृष्टिकोणों से हो सकता है सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक । उक्त तीनों में अनुसूचित तथा अनुसूचित जन जाति के लोग अधिकांश पिछड़े हुये हैं । अतः इन्हें वर्ग में सम्मिलित किया गया है ।

महात्मा गांधी ने अनुसूचित जाति को "हरिजन" शब्द से सम्बोधित किया । इनके उत्थान के अनेक प्रयास किये । 1947 के बाद स्वतन्त्र भारत ने इनकी दशा सुधा क्रान्तिकारी कदम उठाए । भारतीय संविधान में इनकी दशा सुधारने के निम्न प्रा रखे गये ।

अनुच्छेद 17—अस्पृश्यता निवारण अधिनियम चलाना तथा इसको व्यवहार में ला पाबन्दी लगाना ।

अनुच्छेद 15—दुकानों, जलपान गृहों, भोजनालयों, सार्वजनिक मनोरंजन स्थलों, तालाब, सड़क पर लगे प्रतिबन्धों की समाप्ति ।

अनुच्छेद 29—राजकीय तथा राज्य सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पर प्रकार का प्रतिबन्ध न होगा ।

1971 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जातियों के लोगों की संख्या 7·99 करो जो कुल जनसंख्या का 14.6 प्रतिशत है । शताब्दियों से अनुसूचित जातियां दरिद्र, हीन, दुर्बल व बिखरा रही हैं । पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार ने समानता के ि पर अधिक बल दिया । इसके परिणाम स्वरूप संविधान द्वारा इन्हें संरक्षण प्राप्त हुआ । सुविधायें प्रदान करके इस वर्ग के लोगों को अन्य के समान स्तर ऊंचा उठाने का प्रयत्न जा रहा है ।

निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृत्ति, पुस्तकें तथा अन्य स्टेशनरी की निःशुल्क व्यवस्था, भोजन, छात्रावास सम्बन्धी अनेक सुविधाएं प्रदान करके इनमें शिक्षित व्यक्तियों का बढ़ाने का प्रयत्न जारी है । भारत सरकार ने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजा छात्रों को छात्रवृत्तियां देना प्रारम्भ किया । 1953-54 से विदेशों में अध्ययन करने

ात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाने लगीं । सरकार द्वारा इलाहाबाद, मद्रास और पटियाला में पूर्व दीक्षा केन्द्र स्थापित किये गये हैं । जहां पर केन्द्रीय लोक सेवा आयोग द्वारा संचालित रीक्षाओं के लिये अनुसूचित जाति के छात्रों को तैयार किया जाता है । अनेक राज्य सरकारों ने भी ऐसे प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये हैं । 1966–67 में कैरियर प्लानिंग स्कीम भी चलाई गई है । जहां अनुसूचित जातियों के छात्रों को उपयुक्त नियुक्ति प्राप्त करने में सहायता की जाती है । तकनीकी तथा व्यावसायिक विद्यालय भी इनके लिये स्थापित किये गये हैं । पर उनमें इनका बहुत कम प्रतिशत जाता है । सभी प्रकार की शिक्षण संस्थाओं में 1965–66 में अनुसूचित जाति के छात्रों की कुल संख्या 76 से 86 लाख तक हो गयी थी । सबसे अधिक वृद्धि प्राथमिक स्तर पर 16 लाख की हुई ।

पिछड़े वर्ग तथा अनुसूचित जनजाति की शिक्षा–समस्यायें––

यह स्पष्ट है कि शिक्षा का प्रसार पिछड़े वर्ग तथा अनुसूचित जनजाति में बहुत कम हुआ है । 1961 की जन गणना के अनुसार 10.3 प्रतिशत अनुसूचित तथा 8.5 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के लोग शिक्षित हो पाये हैं । इनकी शिक्षा प्रसार में बाधक कुछ समस्यायें निम्नलिखित हैं :

1––माता पिता की निर्धनता––ये लोग सामाजिक व भौगोलिक कारणों से निर्धनता की बेड़ी में जकड़े हैं । इस कारण बच्चों को भी काम करना आवश्यक हो जाता है । अतः बच्चे शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाते हैं ।

2––अभिभावकों का अशिक्षित होना––इस वर्ग में पहले से ही शिक्षा का अभाव होने के कारण अविभावक अशिक्षित हैं । वे शिक्षा के महत्व से परिचित नहीं हैं । अतः बच्चों की शिक्षा के प्रति उदासीन रहते हैं ।

3––अस्थाई जीवन––इस वर्ग के अधिकांश लोग समूहों में घूमने फिरने वाला जीवन व्यतीत करते हैं । अतः इनके बच्चों की शिक्षा व्यवस्था करना कठिन होता है ।

4––विद्यालयों का अभाव––अनुसूचित जनजाति के लोग देश में समान रूप से वितरित नहीं हैं । इनकी बस्तियों के समीप विद्यालयों का अभाव है ।

5––ह्रास एवं अवरोध––

6––जनजाति की भाषा–लिपि का अभाव––देश के विभिन्न भागों में बसने के कारण भाषा में बड़ी विविधता पाई जाती है । साथ ही इनकी भाषाओं की कोई लिपि नहीं है । अतः समस्या यह है कि इन्हें किस भाषा में पढ़ाया जाय ।

7––जनजाति में योग्य अध्यापकों का अभाव––जनजाति में ऐसे शिक्षित–प्रशिक्षित कम हैं जो अध्यापन कार्य का दायित्व सम्भाल सकें ।

8––अध्यापकों को सुविधाओं का अभाव––साधनों की कमी के कारण अध्यापक जनजाति के पिछड़े दूर क्षेत्रों में जाना पसन्द नहीं करते ।

9––शिक्षा का उनकी आवश्यकतानुसार न होना––शिक्षा का पाठ्यक्रम इनकी भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल न होने से वे इसमें रुचि नहीं लेते ।

10––अस्पृश्यता की समस्या––अस्पृश्यता की समस्या भी कुछ सीमा तक शिक्षा प्रसार में बाधक है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने इनका उत्थान करने के सभी प्रयत्न किये हैं । इनकी शिक्षा प्रसार के लिये विशिष्ट कार्यक्रम बनाए गए फिर भी इनका शिक्षा प्रतिशत अभी त नीचा है ।

शिक्षा आयोग के सुझाव :

1--जिन स्थानों में इस वर्ग के लोग छोटे समूहों में रहते हैं आवश्यकता बात की है कि उनकी शैक्षिक प्रगति के लिए ऐसे क्षेत्रों में निम्न तीन बिन्दुओं पर वि ध्यान दिया जाए :

(i) यातायात का विकास ।

(ii) स्थायी कृषि व्यवस्था एवं चरागाहों की व्यवस्था ।

(iii) सांस्कृतिक आर्थिक आवश्यकताओं पर ध्यान देना ।

2--जन जातियों में पांच वर्ष की प्रभावशाली शिक्षा के लिए गहन प्रयत्नों आवश्यकता होगी ।

3--प्रौढ़ शिक्षा द्वारा माता-पिता या अभिभावकों को शिक्षा एवं शिक्षक के मा से अवगत कराना ।

4--बालिकाओं की शिक्षा के लिये विशेष प्रोत्साहन देना ।

5--जन जातियों की भाषा का अध्यापकों को ज्ञान कराना । पहले दो वर्षों शिक्षा का माध्यम उनकी भाषा ही होना चाहिए ।

6--पुस्तकों की लिपि उनकी क्षेत्रीय भाषा में होनी चाहिए । क्षेत्रीय भ मौखिक रूप से सिखायी जाय । क्षेत्रीय भाषा तीसरे वर्ष से शिक्षा-माध्यम के में लायी जाय ।

कार्यानुभव तथा दस्तकारी की शिक्षा दी जाय । पाठ्य सहगामी क्रियाओं के स खेलकूद, नृत्य संगीत सम्मिलित किया जाय ।

शिक्षण विधि--व्याख्यान तथा प्रश्नोत्तर विधि तथा ग्रुप डिस्कशन टेकनीक का भी प्र हो सकता है ।

मूल्यांकन--लघु तथा दीर्घ प्रश्नों द्वारा ।

## बालिका-शिक्षा

बालिका शिक्षा का महत्व--

भारतीय संस्कृति में नारी को मां एवं गृहणी के रूप में सदैव उच्च स्थान प्रदान कि गया है । मध्य युग म विदेशियों के आगमन से स्त्री शिक्षा एवं उसकी स्वतंत्रता के वि में दृष्टिकोण बदलता गया । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र ने इस ओर विशेष रूप से ध्य दिया । भारत में नवीन समाज की रचना करने तथा आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में स्त्रि का सक्रिय योगदान प्राप्त करने की दृष्टि से ही संविधान में स्त्रियों को पुरुषों के ही सम स्थान दिया गया है । स्वर्गीय श्री नेहरू ने कहा था कि एक लड़के की शिक्षा एक व्य की शिक्षा है किन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है । 1962 में श्रीमती हं मेहता समिति ने लिखा था कि "यदि भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद, धर्म निरपेक्ष सम का निर्माण करना है तो स्त्रियों को प्रभावशाली ढंग से पुरुषों के समान अवसर दिये बिना कार्य सम्भव नहीं है ।" शिक्षा आयोग 1964-66 ने स्त्री शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डा हुये लिखा है कि "स्त्री शिक्षा कई दृष्टिकोण से पुरुषों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है ।"

त्र भारत में स्त्री शिक्षा की प्रगति--

स्वतंत्रता के बाद स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया । 1948 में विश्वविद्य आयोग ने विश्वविद्यालय स्तर की स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण सिफारिशें 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा भी स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु कई उपयोगी सु

दिये गये । आयोग ने बालिकाओं के लिय गृह विज्ञान की शिक्षा हेतु विशेष प्रबंध की सिफारिश किया ।

1958 में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में स्त्री शिक्षा के विकास व प्रसार हेतु एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया इस समिति ने अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें की, उनमें मुख्य ये थीं :

1--कई वर्षों तक स्त्री शिक्षा को एक बड़ी समस्या मानना पड़ेगा और इसके विकास कार्यों को प्राथमिकता देनी होगी ।

2--बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक विशेष मशीनरी का प्रबन्ध करना होगा जो स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध करे जैसे स्त्री शिक्षा के लिए राष्ट्रीय संस्थान, केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में एक विशेष इकाई, प्रान्तीय संस्थान आदि ।

3--स्त्री शिक्षा का सम्पूर्ण भार केन्द्रीय सरकार को वहन करना चाहिये । इसी के आधार पर National Council of Women Education की स्थापना की गई ।

1963 में ग्रामीण क्षेत्र की बालिकाओं के सम्बन्ध में जांच करने के बाद सार्वजनिक सहयोग प्राप्त करने हेतु अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई जो 1962 में शिक्षा परिषद द्वारा गठित श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा की गई । उक्त समिति ने पाठ्यक्रम के विषय में भी सुझाव दिए । समस्याओं का अध्ययन करने के बाद समिति ने लड़के-लड़कियों के पाठ्यक्रम में अन्तर लाने के लिये निम्न सुझाव दिये ।

1--हम जिस गणतान्त्रिक समाजवादी देश में रहते हैं उसमें शिक्षा का सम्बन्ध वैयक्तिक क्षमता और अभिरुचि तथा योग्यता से होगा। अतः लिंग के आधार पर पाठ्यक्रम में भेद नहीं किया जायगा ।

2--आज के युग में हमें पुरुष एवं स्त्री के बीच मनोवैज्ञानिक भिन्नताओं और इन पर आधारित सामाजिक कार्यों के भेद-भाव को स्वीकार करना होगा और इसी को आधार मानकर लड़के-लड़कियों का पाठ्यक्रम बनाना होगा । पर ऐसा करते समय यह ध्यान रखा जाय कि वे ही मूल्य और अभिवृत्तियां विकसित हों जो भविष्य के लिये आवश्यक हों और ऐसा कुछ भी न किया जाए जिससे वर्तमान विभिन्नताओं में वृद्धि हो । तात्पर्य यह है कि विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक भिन्नता को स्वीकार कर पाठ्यक्रम बने न कि लिंग भेद को आधार मान कर पाठ्यक्रम बने ।

प्राथमिक स्तर--(क) इस स्तर पर लड़के-लड़कियों का एक ही पाठ्यक्रम हो ।

(ख) बालिकाओं और बालकों दोनों को समान रूप से गाना, नाचना, खाना बनाना, सिलाई करना सिखाया जाय । ताकि बालकों में नई भावना जागृत हो ।

(ग) प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापिकाओं का अनुपात बढ़ाया जाय ।

जूनियर हाई स्कूल स्तर--इस स्तर पर साधारण शिक्षा का पाठ्यक्रम लड़के लड़कियों के लिए समान होना चाहिए इसमें गृह-विज्ञान भी एक विषय होना चाहिए, व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी इस स्तर के बाद प्रारम्भ किया जाय । सभी स्कूलों में शिल्प शिक्षा आवश्यक रूप से दी जाय जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल हो । इस स्तर पर मिश्रित स्टाफ हो ।

व्यावसायिक शिक्षा--(क) माध्यमिक शिक्षा प्राप्त मध्यम वर्ग की स्त्रियों के लिए व्यावसायिक शिक्षा संस्थाए स्थापित की जाये ।

(ख) स्त्रियों के लिए जूनियर तथा ट्रेड स्कूल स्थापित होना चाहिए ।

कोठारी आयोग की सिफारिशें--

1--कुछ वर्षों के लिए शिक्षा को बड़ा कार्यक्रम मानना चाहिए । पुरुष-स्त्री शिक्षा में व्याप्त अंतर को दूर किया जाय ।

2--शिक्षा की राष्ट्रीय समिति के सुझावों के अनुसार कार्य किया जाय ।

3--कक्षा 8 के बाद पढ़ाई रोकने वाली लड़कियों के लिए गृह-विज्ञान, घरेलू उद्योग--सिलाई, कला, दस्तकारी और दुग्ध उद्योग आदि के लिए अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था हो ।

4--कक्षा 8 तक की लड़कियों को गृह-विज्ञान की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय ।

5--उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह-विज्ञान को वैकल्पिक विषय रखा जाय । संगीत, फाइन आर्टस के अध्ययन को सुविधा प्रदान की जाय ।

6--उच्च शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए लड़कियों की उदारता पूर्वक छात्रवृत्तियां दी जायं ।

7--स्नातक स्तर पर लड़कियों के लिए पृथक् विद्यालय हो सकते हैं किन्तु स्नातकोत्तर स्तर पर अलग विद्यालय होना ठीक नहीं है ।

बालिका शिक्षा की समस्याएं--स्त्री शिक्षा में अनेक ऐसी समस्यायें हैं जिनके कारण इस दिशा में बहुत धीमी गति से प्रगति हो रही है ।

1--अभिभावकों की संकीर्ण विचारधारा--बालिकाओं की शिक्षा के प्रति अभिभावकों की विचारधारा आज भी बहुत संकीर्ण है । उनके विचार रूढ़िवादी हैं ।

2--निर्धनता--देश की अधिकांश जन संख्या निर्धन है जिसके कारण वह अपनी बालिकाओं को उच्च शिक्षा तक पहुंचाने में असफल हो जाते हैं ।

3--बाल विवाह--बाल्यावस्था में विवाह होना भी शिक्षा के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है ।

4--पर्दा प्रथा--नारी शिक्षा का एक महान अभिशाप पर्दा प्रथा है ।

5--अध्यापिकाओं का अभाव--बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए कुशल अध्यापिकाओं का भी अभाव है ।

6--शिक्षा में ह्रास/अवरोध--ह्रास तथा अवरोध की विकट समस्या भी नारी शिक्षा के प्रसार में बाधक है ।

7--विद्यालयों का अभाव--प्राथमिक स्तर के बाद बालिकाओं के विद्यालयों का बहुत अभाव है । विद्यालय दूर होने के कारण बालिकायें शिक्षा से वंचित रह जाती हैं ।

सुझाव--बालिका शिक्षा में सुधार हेतु पर्याप्त परिश्रम एवं प्रयासों की आवश्यकता है ।

1--सामाजिक धारणाओं का निराकरण--बालिका शिक्षा की प्रगति तभी सम्भव है जब सामाजिक कुप्रथाओं का अंत होगा । इसके लिये व्यापक दृष्टिकोण का प्रसार आवश्यक है ।

2--दृष्टिकोण में परिवर्तन--अभिभावकों की संकीर्ण विचार धारा एवं दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन की आवश्यकता है ।

3—आर्थिक प्रगति एवं सहायता—ऐसी परिस्थितियां एवं वातावरण बनाया जाय जिससे कि देश की आर्थिक स्थिति उच्च हो सके। अभिभावक धनाभाव महसूस न करें। बालिकाओं को शैक्षिक अनुदान, सहायता प्रदान कीजिये।

4—स्त्रियों की स्थिति में सुधार—समाज में यह बात समझाना आवश्यक है स्त्रियां भी पुरुषों के समान प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्थिति का सुधार करें। समाज में अच्छा सम्माननीय स्थान मिले।

5—अध्यापिकाओं की पूर्ति—अध्यापिकाओं की पूर्ति के लिये अध्यापन व्यवसा आकर्षित बनाया जाय। वेतन तथा अन्य सुविधायें उपलब्ध हों।

6—पाठ्यक्रम में परिवर्तन—पाठ्यक्रम में विशेष परिवर्तन की आवश्यकता है। बालिकाओं की शिक्षा को उपयोगी और सरस बनाया जाय। पाठ्यक्रम दैनिक जीवन से सम्बन्धित हो। क्रियात्मक ज्ञान आवश्यक है।

7—बालिका विद्यालयों की स्थापना—ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में माध्यमिक तथा निम्न माध्यमिक स्तर के विद्यालय खोले जांय जिससे बालिकाओं को दूर न जाना पड़े।

8—सरकार का दृष्टिकोण—शासन का दृष्टिकोण भी इस दिशा में उदार होना चाहिए। बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने की योजनायें अधिक बनें, व्यय भी बढ़ाया जाय।

9—प्रशासन में सुधार—बालिका शिक्षा की प्रगति के लिए प्रशासनिक ढांचे में भी तकनीकी सुधार की आवश्यकता है।

10—शिक्षण विधि—बालिका की शिक्षा हेतु प्रत्येक स्तर की शिक्षा की शिक्षण विधियों में सुधार किया जाय। अध्यापिकाओं को नवीन प्रयोगों में पुनर्बोधन कराया जाय।

11—मूल्यांकन—मूल्यांकन की विधियों में तो पर्याप्त सुधार की आवश्यकत

## समस्या मूलक बालक

परिभाषा—

समस्या मूलक बालक वे हैं जिनके व्यवहार या व्यक्तित्व में किसी प्रकार की अधिक असमान्यता पाई जाती है।

1—आक्रामक और उत्तेजित व्यवहार वाले बालक।

2—वर्मित या धैर्यहीन व्यवहार की जटिलताएं—

(क) स्टाउफर और आफेन्स के द्वारा—

(1) चोरी करना, (2) धोखा देना, (3) झूठ बोलना, (4) बड़ों का सम्मान न करना. (5) सुस्ती, (6) विद्यालय की सामग्री नष्ट करना, (7) कार्य में असावधानी, (8) आज्ञा का उल्लंघन करना, (9) अनैतिकता, (10) कक्षा से भाग जाना।

व्यवहार की जटिलता के कारण—

1—वंश परम्परागत कारण।

2—वातावरण से सम्बन्धित कारण—

(1) परिवार का वातावरण।

(2) विद्यालय का वातावरण।

(3) समाज का गलावरण ।

(4) गंदी फिल्म ।

(5) अश्लील साहित्य ।

(6) समाज में अनैतिकता ।

(7) बेकारी ।

(8) सरकार में भ्रष्टाचार ।

(9) जातीय भेद ।

निराकरण, वर्तमान व्यवस्था और योजनायें--

निवारण विधि--

(1) कम और निश्चित नियम ।

(2) छात्रों से बहुत अधिक न मिलना ।

(3) छात्रों को कार्य में संलग्न रखना ।

(4) छात्रों के बारे में जानकारी करना ।

(5) छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास ।

(6) सामूहिक क्रियाओं को प्रोत्साहन ।

(7) मार्ग प्रदर्शन ।

विधियां—

(1) सुधारात्मक दृष्टि से धिक्कारना ।

(2) अतिरिक्त कार्य ।

(3) कक्षा में खड़ा कर देना ।

(4) अलग से परामर्श देना ।

(5) कक्षा से निकाल देना ।

(6) अभिभावकों को सूचित करना ।

(7) शारीरिक दंड देना ।

(8) क्षमा याचना ।

विकलांग बालक--

इस प्रकार के बालक या व्यक्तियों को हम निम्न रूप से विभक्त कर सकते हैं--

(अ) अंपग (crippled) ।

(ब) सम्पूर्ण और अर्द्ध अंधे (The blind and near blind) ।

(स) पूर्ण बधिर और अपूर्ण बधिर ( The deaf and hard of hearing) ।

(द) हकलाने या दोषयुक्त वाणी वाले (defective in speeeh) ।

(ए) निर्बल या कोमल (delicate persons) ।

(अ) अपंग--

परिभाषा--

अपंग बालक या व्यक्ति वे हैं जिनकी मांसपेशियां, हड्डियां या जोड़ साधारण दशाओं में अभ्यास नहीं कर पाते। वह व्यक्ति या तो (1) जन्म से ही दोषी होते हैं, या (2) दुर्घटना के परिणामस्वरूप, या (3) किसी बीमारी के परिणाम स्वरूप प्रभाव के कारण दोषयुक्त हो जाते हैं। इनकी मानसिक योग्यता या तो साधारण होती है या तीव्र होती है।

Crow and Crow के अनुसार "ऐसे व्यक्ति जिनमें ऐसा शारीरिक दोष होता है जो किसी भी रूप में उन्हें साधारण क्रियाओं में भाग लेने से रोकता है या उसे प्रतिबन्धित रखता है ऐसे व्यक्ति को हम विकलांग कहते हैं।"

लक्षण--

1--अंगों की मानसिक योग्यता या तो साधारण होती है या तीव्र।

2--मांसपेशियों के दोष।

3--हड्डियों या जोड़ों का अभ्यास नहीं कर पाते।

4--भयंकर बीमारी के प्रभाव के कारण दोषयुक्त।

5--अपंग लोग दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।

6--हीनता की भावना।

कारण--

(1) जन्म से उत्पन्न कारण--

(अ) गर्भाशय में उत्पन्न दोष।

(ब) नशीली वस्तुओं का गर्भकाल में माता द्वारा प्रयोग।

(स) एक्सरे के प्रभाव।

2--वंशानुक्रम कारण--पैतृक गुणों के आधार पर।

3--वातावरण सम्बन्धी कारण--

(अ) परिवार की आर्थिक स्थिति।

(ब) माता-पिता के मध्य आपसी संघर्ष।

(स) विद्यालय का वातावरण।

(प) समाज के रीति-रिवाज।

निराकरण, वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और योजनाएं--

ग्रसितता चाहे थोड़ी हो या अधिक, किन्तु ग्रसित बालक या व्यक्ति को अपने समायोजन में अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसका कारण उसकी शारीरिक कुरूपता या उसका बढंगापन होता है।

ग्रसित बालक अपनी साधारण इच्छित क्रियाओं में भाग लेने के योग्य नहीं होता अतः अपनी अयोग्यता के कारण संवेगात्मक समस्याओं के रूप में विकसित होते हैं। जैसे क्रोध और हतोत्साहस।

इसलिए एक शारीरिक न्यूनता से ग्रसित अपंग बालकों के समायोजन के लिए शिक्षा को उचित रूप में संगठित करना चाहिए जो निम्न हैं—

(1) चूंकि अपंग साधारण बुद्धि के होते हैं इसलिए उन्हें शिक्षा द्वारा मानसिक विकास के लिए पूर्ण अवसर देना चाहिए ।

(2) शिक्षा द्वारा उनके अन्दर इस प्रकार की भावना को उत्पन्न करना चाहिए जिससे वे अपनी हीनता की भावना कम कर सकें और उपयुक्त व्यवहार को विकसित कर सकें ।

(3) पाठशाला में उनके लिए विशेष प्रकार की मेज, कुर्सियां, अलग कमरा तथा पुस्तकों का भार कम होना चाहिए ।

(4) उनको ऐसी व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करनी चाहिये जो उनकी शारीरिक न्यूनता का आधार न हो । उन्हें बैठने वाली नौकरी या व्यवसाय की शिक्षा देनी चाहिए ।

(ब) संपूर्ण अंधे और अर्द्ध अंधे—

अधिकतर जिन बालकों में दृष्टि दोष होता है वे उसे छिपाने का प्रयत्न करते हैं उनमें निम्न दोष होते हैं—

(1) पढ़ते समय अधिक झुकना ।

(2) विशेष प्रकार से पुस्तक पकड़ना ।

(3) क्रोधित होना ।

(4) आँखों को बार-बार मलना ।

(5) सिर तथा शरीर का विशेष स्थिति में होना ।

निराकरण—

1—यदि बालक पूर्ण रूप से अन्धा हो तो उसे सम्पूर्ण अन्धों के विद्यालय में भेजना चाहिये । उनके उचित समायोजन के लिए व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाये, उन्हें संगीत गायन भी सिखाया जाय ।

2—जो बालक अर्द्ध अन्धे हों उन्हें कंजरवेशन कक्षाओं में (conservation classes) जहां बड़े छापे वाली पुस्तकें और इसी प्रकार की सामग्री प्रयोग की जाती है, वहां भेजना चाहिए ।

3—विद्यालयों में स्पष्ट छपी हुई पुस्तकों का प्रयोग होना चाहिए ।

4—विद्यालयों में स्पष्ट रोशनी का प्रबन्ध होना चाहिए ।

5—श्याम पट्ट को स्वच्छ रखना चाहिए ।

6—बैठने का उचित प्रबन्ध किया जाय, आरामदायक कुर्सियों का प्रयोग हो ।

पूर्ण बधिर तथा अपूर्ण बधिर—

ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है जिसने कोई आवाज सुनी हो न हो या जिसने बोलने सुनने की शक्ति को खो दिया हो । वे व्यक्ति जिसने बोलना सीख लिया हो और बाद में उसकी श्रवण शक्ति नष्ट हो गई हो तो हम उसे अपूर्ण बधिर कहते हैं ।

ऐसे बालकों का समायोजन निम्न प्रकार से हो सकता है--

(1) विद्यालयों में इस प्रकार के साधनों का विकास करना चाहिये जिससे बहरे बालकों और अध्यापकों में सम्बन्ध स्थापित हो सके। गूंगे बहरे विद्यालय खोलने चाहिए जिससे वे शिक्षा ग्रहण कर सकें।

(2) बालक जो हकलाता है वह पूर्ण बधिर है। उसे कक्षा में अलग आगे बैठाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के चलते हुए ओठों को देख सके और अध्यापक की बातें समझ सकें।

(3) बधिर या कम बधिर लोग उचित रूप से समायोजन कर सकते हैं। अन्वेषण या गणना कार्य कर सकते हैं।

(द) हकलाने या दोष युक्त वाणी वाले बालक

कारण--

तुतलाना, हकलाना, धीरे-धीरे बोलना, नाक दबाकर बोलना, मोटी आवाज, कर्कशता आदि दोषयुक्त वाले विद्यु हैं। दोषयुक्त वाणी का कारण शारीरिक दोष हो सकता है किन्तु कुछ ऐसे भी वाणी दोष हैं जो पूर्ण या अपूर्ण रूप में मनोवैज्ञानिक दोष हैं। वे माता-पिता या अभिभावकों की लापरवाही के कारण विकसित होते हैं।

यदि हम किसी बालक को उचित सही प्रकार की उत्तेजना से बोलना सिखाते हैं तो वह इन कमियों को दूर कर देता है।

वाणी के दोषों को दूर करने के उपाय या कम करने के उपाय--

(1) शारीरिक दोष को शल्य क्रिया ( Surgical operation ) से दूर किया जा सकता है।

(2) बालक अच्छा बोलने का अनुकरण करते हैं इसलिये परिवार के प्रत्येक सदस्य को उच्चारण सही बोलना चाहिए। प्यार म आकर कुछ माता-पिता जानबझ कर हकलाते हैं। इसलिए इस प्रकार के दोष को दूर करना चाहिये।

(3) घर तथा विद्यालय का वातावरण तनाव को कम करने वाला होना चाहिये।

(4) उचित सन्तुलित भोजन देना चाहिये।

(5) विशेष प्रकार की शिक्षा जो बोलने में सहायक हो।

(य) निर्बल या कोमल ( The delicate person )--

परिभाषा--

निर्बल और कोमल व्यक्तियों से हमारा तात्पर्य ऐसे लोगों से है जिनकी शारीरिक दशा निम्न प्रकार की है--

(1) ऐसे बालक जिनमें रक्त की कमी है।

(2) ऐसे बालक जिनमें शक्ति की कमी है।

(3) ऐसे बालक जिनमें ग्रंथि-दोष है।

कोमल व्यक्ति--

1--कोमल व्यक्ति साधारण कार्यों तथा खेलों में भाग नहीं ले सकता है क्योंकि उसका शरीर अधिक अभ्यास में साधारण प्रकार से थक जाता है और वह बीमार पड़ जाता है।

2—शीघ्र ही गर्मी–सर्दी के प्रभाव के कारण बीमार पड़ जाता है। अधिकतर ऐसे कोमल व्यक्ति उचित भोजन की कमी के कारण होते हैं।

निराकरण—

(1) विद्यालय में समय–समय पर शारीरिक परीक्षा।

(2) स्वास्थ्य का स्तर ठीक किया जाय।

(3) पाठशाला में दोपहर के खाने या दूध का प्रबन्ध किया जाय जो स्वेच्छा से किया जाय।

(र) बाल अपराधी—

परिभाषा—

हेड फील्ड के अनुसार "ऐसे बालक जो समाज की सुविधाओं का प्रयोग तो करता है किन्तु समाज द्वारा जिस व्यवहार की आशा की जाती ह वह नहीं करता है। ऐसे बालक को बाल अपराधी या अपचारी कहते हैं"। समाज ऐसे बालक को दण्ड प्रदान करता है।

कारण—

इसके दो कारण हैं—(1) उसके असामाजिक व्यवहार से उसकी रक्षा की जा सके। (2) उसके त्रुटिपूर्ण विचार उचित रूप ले लें। किन्तु हम बाल अपराधी उसी बालक को कहते हैं जिसकी सामाजिक क्रियायें इतनी गम्भीर रूप धारण कर लेती हैं जिसके लिये उसे दण्ड देना पड़ता है। किसी नियम का खंडन ही बाल अपराध है। बाल अपराधी वे बालक हैं जो चोरी करते हैं तथा मार–पीट करते हैं।

निराकरण—

1—घर में उचित वातावरण का बनाना।

2—बालकों के प्रति उचित व्यवहार अपनाना।

3—उसकी बुरी आदतों को रोकना।

4—बालकों को अधिक जेब खर्च नहीं देना।

5—अभिभावकों को बाल–निर्देशन का ज्ञान होना।

(ल) मन्द बुद्धि बालक (मानसिक रूप से पिछड़े हुए बालक)—

परिभाषा—

मानसिक दृष्टि से पिछड़े बालकों से हमारा अभिप्राय उन बालकों से है जो किसी भी शारीरिक तथा मानसिक रोग के कारण मन्द बुद्धि का परिचय देते हैं।

लक्षण—

1—बुद्धि लब्धि में 70 से कम होते हैं।

2—सीखने की धीमी गति।

3—सीमित रुचियां।

4—मौलिकता का अभाव।

5—पेशीय समन्वय का अभाव।

कारण--

1--समायोजन न करने की समस्या--

(1) परिवार में समायोजन।

(2) विद्यालय में समायोजन ।

(3) समाज में समायोजन ।

2--संवेगात्मक स्थिरता ।

3--शारीरिक तथा मानसिक विकास की समस्या।

4--गर्भ काल में होने वाली घटनाएं--

(1) एक्सरे का प्रभाव ।

(2) माता द्वारा नशीली वस्तुओं का उपयोग ।

(3) रोगग्रस्त माता ।

5--वंश परम्परा का कारण ।

(1) मानसिक आघात ।

(2) जन्म के समय आघात ।

(3) बीमारी और अपरिपक्व जन्म ।

(4) ग्रंथियों का विकार ।

(5) निर्धनता।

निराकरण--

1--समायोजन की समस्या दूर की जाय ।

2--सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार ।

3--शारीरिक देखभाल ।

4--खेल तथा अच्छी आदतों का विकास ।

5--समाज समूह विधियों का प्रयोग ।

6--व्यावसायिक प्रशिक्षण ।

अध्यापकों में निम्नलिखित विशेषतायें--

1--संवेगात्मक स्थिरता ।

2--सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार ।

3--सही निर्णय लेने की योग्यता ।

4--रचना, कौशल कार्यक्रम का ज्ञान ।

5--आदर्श व्यवहार।

6--श्रव्य दृश्य सामग्री के प्रयोग का ज्ञान।

(व) पिछड़े हुए बालक--

परिभाषा--

बर्ट के अनुसार "पिछड़ा हुआ बालक वह है जो शिक्षा सत्र के बीच में अपनी आयु स्तर को कक्षा से एक दर्जे नीचे का कार्य न कर सके।"

"पिछड़ा बालक वह है जो एक या अधिक विषयों में बहुत कम काम कर रहा हो यद्यपि उसकी आयु कक्षा की औसत के लगभग बराबर है।"

कारण--

1--शारीरिक कारण--

(i) कमजोर स्वास्थ्य।

(ii) ग्रंथियों का ठीक कार्य न करना।

(iii) ज्ञानेन्द्रियों के दोष।

(iv) बोलने के दोष।

(v) स्नायु मंडल पर आघात।

2--मानसिक कारण--

(i) बुद्धि की कमी।

(ii) अभिवृत्ति का अभाव।

3--वातावरण से सम्बन्धित कारण--

(i) पारिवारिक प्रतिकारक।

(ii) घर में संघर्ष।

(iii) माता-पिता का अशिक्षित होना।

4--विद्यालय का वातावरण।

(i) सुविधाओं की कमी।

(ii) विद्यालय से अनुपस्थिति।

(iii) अयोग्य अध्यापक।

(iv) शैक्षिक मार्ग प्रदर्शन की कमी।

5--सामाजिक और सांस्कृतिक कारण--

(i) माता-पिता के व्यवसाय।

(ii) जाति, धर्म सम्प्रदाय पर आधारित विद्यालय।

(iii) सरकारी नौकरियों में लगे माता-पिता का स्थानान्तरण।

निराकरण—

(i) शारीरिक परीक्षण ।

(ii) व्यक्तिगत ध्यान ।

(iii) हस्त उद्योग ।

(iv) विशेष विद्यालय ।

प्रतिभावान बालक (Gif ed Child)

परिभाषा—

वह प्रत्येक बालक जो अपने आयु स्तर के बच्चों से किसी योग्यता में अधिक हो तथा जो हमारे समाज को नई दिशा दे सके ।

लक्षण—

(i) इनकी बुद्धि लब्धि 140+से अधिक होती है ।

(ii) सामान्य वाले से जन्म के समय 1·7 इंच लम्बा और वजन में एक पौन्ड भारी होता है ।

(iii) अध्ययन की योग्यता ।

(iv) अमूर्त चिन्तन में रुचि ।

(u) मार्ग प्रदर्शन की कम आवश्यकता ।

निराकरण—

( ) धीमी गति से शिक्षण दिया जाय ।

(i ) घर में समायोजन की आवश्यकता ।

(iii) विद्यालय में समायोजन की सुविधा ।

4—व्यक्तिगत शिक्षण ।

5—विशेष विद्यालय और कक्षायें ।

6—विस्तृत पाठ्यक्रम ।

7—अच्छे पुस्तकालयों और प्रयोगों का विकास ।

8—सामूहिक कार्यों का प्रोत्साहन ।

9—अध्यापन विधियों द्वारा शिक्षण ।

10—शैक्षिक पर्यटन ।

11—स्वतन्त्र कार्य ।

## (च) अनौपचारिक शिक्षा

परिभाषा—अनौपचारिक शिक्षा औपचारिकता से मुक्त एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था है जो औपचारिक शिक्षा की सीमाओं और कमियों की पूर्ति करती है । इस व्यवस्था में वे औपचारिक तत्व नहीं है जो जन शिक्षा की दशा में उसकी क्षमता को सीमित करते हैं ।

इसे औपचारिकता से मुक्ति की ओर उन्मुख एक व्यवस्था कहना उपयुक्त होगा । परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम में कोई निश्चित लक्ष्य नहीं या इसके पाठ्यक्रम का कोई स्वरूप नहीं अथवा इसमें क्रमबद्धता एवं आयोजन का अभाव रहता है । इसमें ये सभी तत्व हैं पर हर स्थान पर इसमें एकरूपता का आग्रह नहीं होता । स्थान विशेष की आवश्यकतानुसार ये अपने को ढालने की क्षमता रखती है । इस प्रकार यह एक सुनियोजित लचीली शिक्षा व्यवस्था है जो समुदाय की आवश्यकतानुसार नगर व ग्राम क्षेत्र की स्थानीय पृष्ठ भूमि में बालकों को शिक्षित करती है तथा स्थानीय परिवेश में विशिष्ट समाजोपयोगी कार्यों द्वारा जीवनोपयोगी व्यवस्था हेतु तैयार करती है । यह योजना कम समय में एक लचीले पाठ्यक्रम द्वारा एक निरक्षर अथवा अपूर्ण रूप से शिक्षित को शिक्षित करती है ।

आवश्यकता--

सामान्यतः पूरे देश और विशेषतः उत्तर प्रदेश के सम्बन्ध में यह सत्य है कि प्रारम्भिक विद्यालयों में प्रविष्ट बालक/बालिकाओं में से बच्चे विद्यालयी शिक्षा पूरी करने के पहले ही छोड़ देते हैं । कुछ एक ही कक्षा में फेल होने की वजह से विद्यालय छोड़ देते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी बच्चे हैं जो घर की निर्धनता के कारण मां-बाप के व्यवसाय में तथा खेती के काम में उनकी सहायता करते हैं । इस कारण अभिभावक उन्हें विद्यालय नहीं भेजते हैं । उपलब्ध आकड़ों से पता चलता है कि कक्षा 1 में प्रविष्ट 100 छात्रों में से 31 छात्र कक्षा 5 तक 31 छात्र कक्षा 6 तक 27 छात्र कक्षा 8 तक पहुंच पाते हैं । इस क्षति के निवारण हेतु तथा बहुत बड़ी संख्या में शिक्षा से वंचित बालक-बालिकाओं को शिक्षा सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम चलाया जा रहा है । यह शिक्षा प्रदान करने की ऐसी विधि है जो यद्यपि औपचारिक शिक्षा की परिधि से बाहर है फिर भी औपचारिक शिक्षा की पूरक है । इसके पाठ्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं संशोधन की पर्याप्त गुंजाइश होती है और शिक्षा देने का समय भी स्थानीय बालकों की सुविधानुसार निश्चित किया जाता है जिससे जो बालक-बालिकाएं पूरे समय के औपचारिक विद्यालयों का लाभ नहीं उठा पाते वे इस व्यवस्था द्वारा शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं । योजना के रूप में यह 6 से 14 वय वर्ग के बच्चों के लिये निर्धारित किया गया है ।

अनौपचारिक शिक्षा योजना--स्थिति एवं प्रगति--

भारत सरकार के सहयोग से उ० प्र० शासन द्वारा एक व्यापक अनौपचारिक शिक्षा योजना प्रारम्भ की गई है । आशा की जाती है कि आगामी पांच वर्षों में 9 से 14 वय वर्ग के जो बच्चे अपनी औपचारिक शिक्षा की मुख्य धारा में सम्मिलित न हो सकेंगे उनको अनौपचारिक केन्द्रों में अपनी सुविधा के अनुसार पढ़ने का अवसर मिल सकेगा ।

उत्तर प्रदेश की राजाज्ञानुसार प्रदेश के 56 जिलों में 9 से 11 वय वर्ग के बच्चों के लिये 5,600 अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र (प्रत्येक जनपद में 100 केन्द्र की दर से) तथा 11 से 14 वयवर्ग के बच्चों के लिये पूरे प्रदेश में 1,600 अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र (मैदानी क्षेत्र में 30 केन्द्र प्रति जनपद तथा पहाड़ी क्षेत्र में 20 केन्द्र प्रति जनपद की दर से) खोले गये हैं । इन अनौपचारिक केन्द्रों में प्राइमरी स्तर (कक्षा 1 से 5 तक) की शिक्षा दो वर्ष में तथा जूनियर हाई स्कूल स्तर (कक्षा 6 से 8 तक) की शिक्षा तीन वर्ष में दी जायेगी ।

प्रदेशीय स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के क्रियान्वयन तथा केन्द्रों के प्रभावी संचालन हेतु सम्बन्धित राजाज्ञा के अन्तर्गत शिक्षा निदेशालय, राज्य शिक्षा संस्थान और जनपद स्तर पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण का प्राविधान किया गया है । शिक्षा निदेशालय स्तर पर संयुक्त शिक्षा निदेशक (अनौपचारिक शिक्षा) का पद तथा राज्य शिक्षा संस्थान स्तर पर एक वरिष्ठ परामर्शी एवं चार परामर्शियों का पद सृजित किया गया है ।

जनपद स्तर पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण हेतु प्रत्येक जनपद के लिये एक वरिष्ठ अध्यापक (कोआर्डिनेटर), एक ग्राम सेवक तथा एक ग्राम सेविका के प सृजित किये गये हैं ।

सम्बन्धित राजाज्ञा के अनुसार राज्य शिक्षा संस्थान को सर्वेक्षण प्रपत्र तैयार करने, पठन सामग्री निर्मित करने तथा अनौपचारिक शिक्षा योजना से सम्बद्ध शिक्षकों, प्रशिक्षकों, निरीक्षकों आदि को प्रशिक्षित करने का कार्य सौंपा गया है । पाठन सामग्री का निर्माण किया जा रहा है । जनपद से सम्बन्धित क्षेत्रों का सर्वेक्षण करने तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने की योजना इस प्रकार है :—

1—प्रशिक्षण कार्य योजना—

(1) बेसिक शिक्षा अधिकारियों का अभिनवीकरण ।

(2) दीक्षा विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों/प्रधानाध्यापिकाओं का प्रशिक्षण ।

(3) रा० दी० वि० के ग्रामसेवकों तथा ग्राम सेविकाओं का प्रशिक्षण ।

(4) अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के शिक्षकों का जनपद स्तर पर सम्बन्धित दीक्षा विद्यालयों में प्रशिक्षण ।

(2) सर्वेक्षण कार्य—बेसिक शिक्षा अधिकारी अपने जनपद में कर रहे हैं ।

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण—

जनपदों में निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण हेतु विकास खण्डों में पर्यवेक्षकों की नियुक्ति हो चुकी है । ये पर्यवेक्षक अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के सुचारु संचालन, प्रभावी निरीक्षण तथा केन्द्रों के शिक्षकों का मार्ग दर्शन करेंगे ।

जनपद स्तर पर अतिरिक्त उप-विद्यालय निरीक्षक अनौपचारिक शिक्षा सम्बन्धी कार्य के लिये उत्तरदायी होंगे और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करेंगे ।

उपर्युक्त सभी कार्य प्रारम्भ हो गये हैं और विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण कार्य सर्वेक्षण कार्य तथा पाठ्य सामग्री का निर्माण हो रहा है ।

अपने देश की प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की समस्याओं को देखते हुये हमारी अनेक समस्याओं का समाधान अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था द्वारा हो सकती है क्योंकि इसमें कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो औपचारिक शिक्षा प्रणाली में उपलब्ध नहीं है जैसे :—

(i) नमनीयता ।

(ii) आवश्यकता परकता ।

(iii) व्यावहारिकता ।

(i) नमनीयता—अनौपचारिक शिक्षा की पठन-पाठन सामग्री का शिक्षार्थियों के जीवन तथा परिवेश से सीधा सम्बन्ध होता है । इस दृष्टि से विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय विशेषताओं के अनुसार अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम में नमनीयता की पर्याप्त गुंजाइश है । समुदाय तथा परिवेश की विशिष्टताओं के अनुसार अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के विद्यार्थियों के लिये केन्द्र का समय, पाठ्यक्रम, शैक्षणिक सामग्री आदि में लचीलापन रखा जाता है ।

(ii) आवश्यकता परकता—यह शिक्षा कार्यक्रम को स्थानीय समुदाय के जीवन, भौतिक तथा सामाजिक परिवेश के अनुकूल होना आवश्यक होता है इसलिये अनौपचारिक शिक्षा

कार्यक्रम स्थानीय समुदाय की अपेक्षाओं, समस्याओं, अभिरुचियों तथा आकांक्षाओं पर आधारित होती है ।

(iii) व्यवहारिकता—अनौपचारिक शिक्षा की सफलता इस बात पर निर्भर है कि वह किस सीमा तक विद्यार्थियों के जीवन के लिये प्रासंगिक तथा उपयोगी सिद्ध होता है ।

मूल्यांकन—

देश तथा प्रदेश में यह कार्य योजना बड़े परिश्रम, लगन तथा विश्वास से प्रारम्भ हुई है । अब कुछ वर्ष चलन के बाद ही हम इसका मूल्यांकन करने की स्थिति में होंगे ।

## (छ) प्रौढ़ शिक्षा तथा सामुदायिक शिक्षा

भारत देश में निरक्षरों का प्रतिशत अन्य देशों की तुलना में बहुत अधिक है । प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिये जन साधारण का शिक्षित होना आवश्यक है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निरक्षरों को साक्षर बनाना आवश्यक है ।

स्वतंत्र भारत में प्रौढ़ शिक्षा का महत्व तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—स्वतंत्रता के बाद प्रौढ़ शिक्षा की ओर जितना अधिक ध्यान हमारे देश ने दिया है उतना कम ही देश दे पाये हैं । इसकी पृष्ठभूमि में जाने पर ज्ञात होता है कि 19वीं शताब्दी में भारत में रात्रि पाठशालायें थीं । भारतीय शिक्षा आयोग ने 1882 में इनके अस्तित्व का उल्लेख किया है परन्तु धीरे-धीरे यह विद्यालय समाप्त हो गये । 1929 में हार्टेग कमेटी के अनुसार 30 लाख प्रौढ़ों को साक्षर बनाया गया ।

1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह अनुभव किया गया कि प्रौढ़ों को केवल साक्षर बनाना पर्याप्त नहीं है बल्कि उन्हें रचनात्मक नागरिकता की शिक्षा देना भी आवश्यक है । प्रौढ़ों को सामाजिक परिवर्तन के लिये तैयार करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया । 1953 में केन्द्रीय फण्डामेण्टल सेन्टर (National Fundamental Centre) की स्थापना की गई जिसने सामाजिक शिक्षा के माध्यम से इस दिशा में काफी काम किया ।

शिक्षा पाठशाला तक ही समाप्त नहीं हो जाती है । आज के प्रौढ़ को तेज गति से बढ़ते हुये सामाजिक परिवर्तनों और जटिलताओं का समझना अनिवार्य है । जो भी विकासशील समाज अपनी आर्थिक प्रगति और सामाजिक परिवर्तन करना चाहता है उसके लिए आवश्यक है कि उस देश के सभी नागरिकों को ऐसी शिक्षा दे कि वे देश के सभी कार्यों, योजनाओं में स्वेच्छा व कुशलता से भाग ले सकें ।

प्रौढ़ शिक्षा उस समाज के लिए और भी आवश्यक हो जाती है जिसदेशका बहुत बड़ा समूह अशिक्षित हो, वहां भी प्रौढ़ शिक्षा आवश्यक है । किसान, कारीगार अथवा श्रमिक को अपनी-अपनी कुशलता एवं क्षमता का पूर्ण ज्ञान कराने के लिये शिक्षित होना आवश्यक है ।

किसी भी देश की सुरक्षा या उन्नति तभी सम्भव है जब वहां के लोग अधिक से अधिक शिक्षित हों । शिक्षित, चरित्रवान, अनुशासित नागरिक ही देश की सुरक्षा और प्रगति में सहायक होते हैं । प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक को उन अवसरों का ज्ञान हो जिससे वह अपनी स्वेच्छा से व्यक्तिगत प्रगति तथा व्यावसायिक विकास के साथ देश के सामाजिक एवं राजनैतिक प्रगति में सहायक हो सके ।

सामान्यतया प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम सार्वजनिक साक्षरता को मानकर चलता है पर हमारे देश में जहां 70 प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं वहां निरक्षरता घटाना भी प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य है ।

प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य--

1--प्रत्येक नागरिक (प्रौढ़) को अपनी प्रगति के साथ-साथ देश की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक उन्नति के सहयोग का ज्ञान देना ।

2--प्रत्येक प्रौढ़ को यह ज्ञान देना कि वह अपने अधिकार व कर्तव्यों का पालन करते हुये स्वतंत्रता व आनन्द से अपना जीवन बिता सके ।

3--अपनी रुचि व क्षमतानुकूल अपने लिये व्यवसाय का चयन करने का ज्ञान देना ।

4--स्वावलम्बन की शिक्षा भी प्रत्वेक प्रौढ़ को अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए ।

5--उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय कि वे स्वयं प्रत्येक क्षेत्र में तार्किक विचार व दृष्टिकोण अपना सकें ।

6--प्रौढ़ शिक्षा का यह भी उद्देश्य है कि नागरिकों को नवीन प्रयोगों और विकास योजनाओं का ज्ञान हो ।

7--प्रौढ़ शिक्षा द्वारा समुचित अंतराष्ट्रीय ज्ञान दिया जाना ।

3--प्रौढ़ों को उनके दैनिक व्यवहार की आवश्यकताओं का भी ज्ञान होना चाहिए ।

महत्वपूर्ण संस्थाएं--

1--1956 में केन्द्रीय सरकार ने नेशनल फण्डामेन्टल सेन्टर की स्थापना दिल्ली में की। इसका मुख्य कार्य प्रशिक्षण, शोध व मूल्यांकन कार्य करना तथा निर्देशन सामग्री तैयार करना ।

2--बंगाल सोशल साइंस लोग कलकत्ता की गरीब बस्ती में 1913 में स्थापित हुई थी । इसने एक स्पेशल एजूकेशन सेन्टर साक्षरता कार्य हेतु पश्चिमी बंगाल में स्थापित किया ।

3--सरोजनी नलिनी दत्त स्मारक संगठन भी कलकत्ता में श्रमिकों के लिये साक्षर कक्षाएं चलाता है ।

4--बम्बई प्रौढ़ संगठन--1934 में बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित हुआ । यह कार्यरत प्रौढ़ों के लिए कक्षाएं व पुस्तकालय सुविधा प्रदान करता है ।

5--साक्षरता निकेतन लखनऊ--यह संस्था 1951 से शिक्षकों को प्रौढ़ साक्षरता का प्रशिक्षण, ग्राम कक्षाओं का आयोजन तथा साक्षरता साहित्य प्रदान करती है । महिलाओं के लिये विशेष कार्यक्रम आयोजित करती है ।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम--भारत सरकार ने यह संकल्प किया है कि निर्धारित समय में 15-35 वय वर्ग के 10 करोड़ निरक्षरों को साक्षर बनाया जायगा । भारत में साक्षरता का प्रतिशत 29.45 तथा उ० प्र० में 21.70 है । 1971 की जनगणना के अनुसार उ० प्र० में 15-35 वयवर्ग के 71.34 लाख पुरुष तथा 107.13 लाख महिलायें कुल 178.47 लाख निरक्षर हैं । जो इस समय लगभग 180 लाख होंगे । इन्हें 5 वर्षों में साक्षर बनाने का उद्देश्य है । कार्यक्रम का प्रारम्भ 1978 में हुआ । कार्य क्रम के मुख्य तीन अंग हैं--साक्षरता, व्यावहारिक ज्ञान और चेतना ।

1--योजना स्वतंत्रता पूर्वक चलेगी । विद्यार्थियों की इच्छाओं और आवश्यकताओं के अनुकूल पाठ्यक्रम चलाए जायेंगे ।

2--कार्यक्रम परियोजनाओं के रूप में चलाया जा रहा है ।

3--एक परियोजना में एक जनपद में 30 से 500 केन्द्र खोलने की योजना है। योजना का क्षेत्र एक या दो विकास खण्ड हैं।

4--केन्द्र प्रारम्भ में निर्बल वर्ग के लोगों के मध्य खोले गये।

5--प्रत्येक प्रौढ़ केन्द्र पर 30 शिक्षार्थी होंगे।

6--प्रत्येक केन्द्र पर एक अंशकालिक प्रशिक्षक होगा।

7--15-35 वयवर्ग के निरक्षरों के लिये प्रत्येक न्याय पंचायत में एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र होगा।

8--प्रत्येक जनपद में एक राजपत्रित परियोजना अधिकारी की नियुक्ति की गयी है।

9--योजना संचालन हेतु बजट में वित्तीय प्रावधान भी किया गया है।

कोठारी आयोग के सुझाव--कोठारी आयोग के अनुसार प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को दो स्तरों पर किया जाना चाहिए।

1--सेलेक्टिव अप्रोच--(क) यह योजना उन निरक्षरों के लिये है जिनकी जानकारी सरलता से की जा सकती है। जैसे बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र तथा बड़े-बड़े फार्मों व मिलों में कार्य करने वाले।

(ख) सभी आर्थिक, सामाजिक, व स्वास्थ्य के कार्यालय अपने अनपढ़ प्रौढ़ों को शिक्षित करने का दायित्व ले सकते हैं।

(ग) खादी ग्रामोद्योग, सामुदायिक विकास योजना के सभी लोग अपने-अपने कर्मचारियों को शिक्षित कर सकते हैं।

2--मास अप्रोच--इस उपागम का तात्पर्य है कि देश के सभी शिक्षित नर-नारी मिल कर संगठित ढंग से प्रौढ़ साक्षरता के सुनियोजित कार्यक्रम में भाग लें। इसे केवल प्रशासनिक तथा शैक्षिक संगठन कार्यान्वित नहीं कर सकते। यह देश के सामाजिक एवं राजनैतिक नेतृत्व का दायित्व है। इस उपागम की सफलता देश के कर्णधारों की आस्था व लगन पर निर्भर होगी।

हमारी केन्द्रीय व राज्य दोनों सरकारों ने प्रौढ़ शिक्षा के कार्य को प्राथमिकता दे कर इसे एक अभियान के रूप में प्रारम्भ किया है। इसमें संदेह नहीं कार्य बहुत विशाल है और चुनौतियों सहित है। इसमें अनेक कठिनाइयां भी है। पर यदि सम्पूर्ण राष्ट्र इस कार्य को निष्ठा व त्याग की भावना से उठा ले तो अवश्य ही सफलता मिलेगी।

## (ज) विज्ञान शिक्षण

महत्व--प्राचीन भारत और आज के भारत में महान अंतर आ गया है। शिक्षा एवं संस्कृति के विकास के साथ-साथ सामाजिक स्तर भी विकसित होता जा रहा है। शिक्षा में में महान परिवर्तन हुये हैं। पुस्तकीय शिक्षा अब क्रियात्मक व व्यावहारिक शिक्षा का रूप ले रही है। इसमें विज्ञान की प्रमुखता हो गई है। अब यह समय वैज्ञानिक युग के नाम से कहा जाता है। प्रत्येक दिन नई खोज, प्रयोग एवं निर्माण हो रहे हैं। इसके साथ ही हमारे समाज की परम्पराओं रीतिरिवाजों और मान्यताओं में भी परिवर्तन हो रहा है।

ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामाजिक ढांचे को समुन्नत बनाने के लिये वैज्ञानिक तथ्यों से परिचित होना चाहिए। मानव के जीवन का प्रत्येक पक्ष वैज्ञानिक उपकरणों से प्रभावित है। अतः नागरिकों को विज्ञान की शिक्षा देना नितान्त आवश्यक है। विज्ञान शिक्षा के निम्नलिखित महत्व है:--

1--विज्ञान शिक्षा छात्र को तार्किक शक्ति प्रदान करती है।

2--इससे बालक क्रियात्मक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता है ।

3--विज्ञान शिक्षण से बालक में श्रम के प्रति श्रद्धा होती है ।

4--बालक में प्रत्येक कार्य सही व शुद्ध करने की क्षमता का विकास होता है ।

5--बालक स्वावलम्बी बनता है तथा उसमें आत्मविश्वास की भावना का जागरण होता है ।

6--बालक एक अच्छा नागरिक बनता है ।

7--बालक को अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय प्रतिभाओं, खोजों एवं प्रयोगों का ज्ञान होता है ।

8--ठोस एवं स्थायी ज्ञान का विकास होता है ।

उक्त तथ्यों की जानकारी हेतु विज्ञान शिक्षण आवश्यक है । इससे देश व देश के नागरिकों का चतुर्मुखी विकास होगा ।

विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य--बालक में एक व्यावहारिक एवं तार्किक दृष्टिकोण पनपाने के लिये विज्ञान शिक्षण सउद्देश्य करना पड़ेगा । इसके कुछ उद्देश्य निर्धारित करने पड़ेंगे । विज्ञान शिक्षण के प्रमुख उद्देश्य तीन हैं :--

1--व्यावहारिक ।

2--अनुशासनात्मक ।

3--सांस्कृतिक ।

व्यावहारिक उद्देश्य--विज्ञान शिक्षण द्वारा बालक को ऐसा ज्ञान देना है जिसके द्वारा बालक अपने दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सके । अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह बालक में ऐसी क्षमता उत्पन्न करे कि वह अपने ज्ञान का उपयोग न केवल प्रयोगशाला में करें वरन् समाज में भी उपयोग करें । बालक का व्यावहारिक दृष्टिकोण विकसित करना भी आवश्यक है ।

अनुशासनात्मक उद्देश्य--देश की प्रगति तभी सम्भव है जब सभी नागरिक चरित्रवान एवं अनुशासित हो । विज्ञान शिक्षण में बालक अनुशासित ढंग से प्रयोग एवं खोज करता है । अतः उसमें अनुशासन की भावना का जागरण होता है । बालक में विज्ञान की शिक्षा से प्रत्येक बात को समझने व सही ढंग से करने की क्षमता उत्पन्न करना चाहिए । तर्क एवं विचार से संगत असंगत वस्तुओं को पहिचानें यही इसका उद्देश्य है ।

सांस्कृतिक उद्देश्य--विज्ञान का हमारे समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा है । जो भी सांस्कृतिक एवं सामाजिक बुराइयां थी उनको अच्छाई बुराई को विज्ञान के विद्यार्थी समझने में सफल हो रहे हैं और बहुत सीमा तक वह बुराइयां समाप्त हो रही हैं। इस प्रकार हमारी संस्कृति में पर्याप्त सुधार आने लगे हैं ।

अन्य--उक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त कुछ और उद्देश्य हैं जिनका उल्लेख भी आवश्यक है । वे निम्नलिखित हैं :--

1--विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति तथा कार्य विधि की क्षमता उत्पन्न करना ।

2--विविध संबोध सामान्यानुमान तथा दृष्टिकोण की ओर ले जाना है ।

3--रुचि तथा संतोष के लिये नवीन पथ तैयार करना ।

4--किसी व्यक्ति को विज्ञान के ज्ञान तथा चातुर्य द्वारा भिन्न-भिन्न समस्याओं को हल करने की क्षमता होना ।

5--विद्यार्थियों में सामाजिक अभिवृति तथा रसास्वादन करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करना ।

**योजनाएं**--विज्ञान शिक्षा को उन्नत बनाने के लिये केन्द्र तथा राज्य सरकार बहुत प्रयास कर रही हैं । अनेक प्रकार की योजनायें चलाई जा रही हैं । यथा विज्ञान संस्थानों की स्थापना, विज्ञान किटों का प्रयोग एवं प्रशिक्षण, संकुल योजना, कैपसूल योजना, आदि ।

विज्ञान संस्थानों की स्थापना--विज्ञान संस्थान में अनेक प्रकार के शोध कार्य किये जाते हैं जिनसे शिक्षण संस्थाओं को परिचित कराया जाता है तथा साहित्य तैयार किया जाता है । संस्थानों में विज्ञान अध्यापकों की गोष्ठी आदि का प्रबंध किया जाता है ।

विज्ञान किटों का प्रशिक्षण एवं प्रयोग--यूनीसेफ की सहायता से केन्द्र सरकार सभी राज्यों को विज्ञान शिक्षा को समुन्नत बनाने के लिए विज्ञान किटों का वितरण कर रही है । ये किट विद्यालयों को उपलब्ध कराये जाते हैं । उनके प्रयोग का प्रशिक्षण भी अध्यापकों को दिया जा रहा है ।

संकुल योजना--यह हमारे प्रदेश में अभी लागू हुई है । इसमें प्रदेश के चुने हुये दीक्षा विद्यालयों, मण्डलीय शिक्षा संस्थानों, राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा भाग लिया जा रहा है । उक्त संस्थाओं द्वारा प्राथमिक स्तर एवं जूनियर स्तर के विद्यालयों के अध्यापकों को बुलाया जाता है । दीक्षा विद्यालयों जो संकुल केन्द्र कहलाते हैं, वहां पर विज्ञान शिक्षण की नवीन विधियों तथा स्तरोन्नयन आदि की शिक्षा अध्यापकों को दी जाती है । गोष्ठी, विचार विमर्श एवं परिचर्चायें की जाती हैं । संकुल केन्द्रों पर अध्यापकों के फेरे होते हैं, जिनमें बालकों के परिवेशीय वातावरण, सामाजिक एवं आर्थिक पहलू तथा ह्रास अवरोध पर विचार विमर्श किया जाता है ।

**कैपसूल योजना**--विज्ञान शिक्षण को और अधिक प्रभावी बनाने के लिये कैपसूल योजना लागू की जा रही है । इसका प्रशिक्षण दीक्षा विद्यालय के अध्यापकों को दिया गया है । इसमें योजनायें बनाई जायेंगी तथा उनको वितरित किया जायगा तथा समस्याओं के निराकरण हेतु विचार विमर्श किये जायेंगे ।

**विज्ञान गोष्ठी का आयोजन**--उच्च अधिकारियों से लेकर निम्न कर्मचारियों तक की विज्ञान गोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है तथा नवीन प्रयोग एवं खोजों की चर्चायें की जाती हैं ।

**विज्ञान शिक्षा की बाधायें**--विज्ञान शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाने में अध्यापक एवं सरकार तथा विभाग को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है उनमें से कुछ निम्न हैं :--

1--धनाभाव--विज्ञान शिक्षा एक महंगी शिक्षा है । भारत देश की आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ नहीं है कि पूरा व्यय भार वहन कर सके । प्राथमिक स्तर से उच्च शिक्षा तक विज्ञान शिक्षा को सुगम बनाने के लिये सरकार को पर्याप्त धन व्यय करना पड़ेगा जिसका पूर्ण अभाव है । फलस्वरूप इसके उन्नयन में बाधा पड़ रही है ।

2--उपकरणों की कमी--विद्यालयों में पर्याप्त उपकरणों की कमी है जिससे छात्रों को ठोस व स्थायी-ज्ञान देना असम्भव हो रहा है । उनको व्यावहारिक एवं क्रियात्मक शिक्षा नहीं दी जा सकती है । अनेक ऐसे विद्यालय हैं जहां उपकरण के नाम पर प्रयोगशाला भी नहीं है ।

3—प्रयोगशालाओं का अभाव—देश में विद्यालयों में विज्ञान प्रयोगशालाओं का बड़ा अभाव है। विशेष रूप से प्राथमिक तथा जूनियर स्तर पर एक भी प्रयोगशाला नहीं है। जो हैं भी उनमें उपकरण नहीं हैं। वे पूर्ण सुसज्जित नहीं हैं।

4—कुशल तथा प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव—विज्ञान शिक्षण हेतु हमारे विद्यालयों में कुशल एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी है। जो भी अध्यापक हैं वे पुरानी विधियों का ज्ञान रखते हैं।

5—वैज्ञानिक दृष्टिकोण—हमारा दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक नहीं है। समाज में अभी विज्ञान शिक्षा की तरफ दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं है।

6—प्रशासनिक अव्यवस्था—विज्ञान शिक्षण में प्रशासनिक अव्यवस्था का भी प्रभाव पड़ रहा है। उचित व्यवस्था न होने से प्राथमिक विद्यालयों में किटों आदि का प्रयोग नहीं होता। निरीक्षक अनभिज्ञ होने के कारण स्वयं नहीं देखते हैं।

विज्ञान शिक्षण की बाधाओं का निराकरण—

1—शासन द्वारा प्रयास—विज्ञान शिक्षा को प्रभावी एवं अ तर बनाने के लिये शासन द्वारा छात्रवृत्ति एवं अनुदान दिये जा रहे हैं। बच्चे छात्रों को विशेष सुविधायें प्रदान की जा रही हैं।

2—उपकरणों की पूर्ति—सरकार द्वारा प्राथमिक स्तर पर विज्ञान किट भेजे गये हैं। जिससे प्राथमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण बोधगम्य बनाया जा सके।

3—प्रयोगशालाओं की व्यवस्था—उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में जूनियर विद्यालयों को तभी मान्यता दी जाती है जब वहां पर निर्धारित प्रयोगशाला सभी उपकरणों से सुसज्जित हो। सरकार द्वारा आर्थिक सहायता भी दी जा रही है।

4—शिक्षण-प्रशिक्षण—राज्य शिक्षा संस्थान, मण्डलीय शिक्षा संस्थानों तथा दीक्षा विद्यालयों द्वारा विज्ञान शिक्षण हेतु अध्यापकों को प्रशिक्षण दिये जा रहे हैं। उनको नवीन और खोजों और प्रयोगों से परिचित कराया जा रहा है।

5—अध्यापकों की पूर्ति—प्रत्येक प्राइमरी स्कूल में एक विज्ञान अध्यापक की व्यवस्था की जा रही है जिससे प्राथमिक शिक्षा में विज्ञान की शिक्षा अच्छी प्रकार से दी जा सके।

6—पाठ्यक्रम—समय-समय पर पाठ्यक्रम सम्बन्धी गोष्ठियां, कार्यशालायें तथा समितियां बनायी जा रही हैं जो विज्ञान के पाठ्यक्रम में नवीन संशोधन व सुधार कर रही हैं।

7—प्रशासनिक सुधार—प्रत्येक मण्डल में एक विज्ञान प्रगति अधिकारी की नियुक्ति की गई है जो मण्डल के सभी जनपदों के विद्यालयों की सूचना रखते हैं जनपद म दीक्षा विद्यालयों में शैक्षिक योजना द्वारा भी कुछ विद्यालयों का निरीक्षण होता है।

प्रशिक्षण एवं प्रयोग हेतु आर्थिक सहायता—केन्द्र तथा राज्य सरकारों को अपने साधन के अतिरिक्त यूनीसेफ से आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही है जिसको दोनों सरकारें विज्ञान शिक्षण को सरल, सुविधा जनक तथा उन्नत बनाने के लिये सहायतार्थ विद्यालयों को दे रही हैं। सभी विद्यालयों को विज्ञान अनुदान दिया जा रहा है तथा छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जा रही हैं। विद्यालयों में भवन व प्रयोगशालाओं हेतु धनराशि स्वीकृत की जाती है।

## (झ) स्वास्थ्य एवं पोषण--

शिक्षा बालक की सुप्त शक्तियों का जागरण है । बालक के पूर्ण शारीरिक व मानसिक विकास का उत्तरदायित्व शिक्षा पर ही है । अध्यापक का कर्तव्य है कि विद्यार्थी के मस्तिष्क को विकसित करना और उसे विविध विषयों का ज्ञान देना किन्तु खराब मस्तिष्क का विकास स्वस्थ शरीर के विकास के बिना सम्भव नहीं है । इन दोनों को कदापि पृथक नहीं किया जा सकता है । बचपन में यदि स्वास्थ्य उत्तम रहेगा तो उनका मस्तिष्क भी उत्तम होगा। यदि बचपन में ही बच्चा अस्वस्थ और रोगी होगा तो विद्यालयी कार्य को ठीक प्रकार से नहीं कर पायेगा । इसलिए विद्यालय स्वास्थ्य विज्ञान के प्रति विचारशील होना अध्यापक का कर्तव्य है । यदि बच्चों के स्वास्थ्य में किसी प्रकार की कमी या रुकावट आती है तो उसको दूर करना अध्यापक का कार्य है ।

बालक के स्वास्थ्य पर परिपक्वन, आनुवांशिक गुण और परिवेश का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । इन सब पर शिक्षक कुछ नहीं कर सकता परन्तु स्वास्थ्य के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर विद्यालयों वातावरण से स्वास्थ्य जीवन का वातावरण उत्पन्न कर इस क्षेत्र में योगदान दे सकता है ।

विद्यालय में विद्याध्ययन का स्थान हवादार एवं प्रकाशमान कमरे हों बैठने का स्थान स्वच्छ हो, स्वच्छ भोजन की व्यवस्था हो विद्यालय का भवन तथा विद्यालय का अधिन विद्यार्थियों के लिये उत्तम हो ।

विद्यालय में ऐसे बालक आते हैं जिन्हें भोजन अच्छा नहीं मिलता है जिससे उनका सन्तोषजनक विकास नहीं हो पाता है । ऐसे बच्चों के शरीर में विकार उत्पन्न हो जाते हैं बहुत सी संक्रामक बीमारियां बच्चों में हो जाती हैं । अध्यापक सुगमता से बच्चों की अस्वस्थता के इन लक्षणों को जान सकता है ।

इन सबके अतिरिक्त अध्यापक बालक की स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों, धारणाओं तथा मनोवृत्तियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्तों में प्रशिक्षित कर उनके भावी जीवन को स्वास्थ्यप्रद बनाने में योग दे सकता है क्योंकि उनका भविष्य का स्वास्थ्य इसी पर आधारित है ।

मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था बालाहार योजना--

गत वर्षों से भारत में इस विषय के महत्व को अधिकाधिक तीव्रता से अनुभव किया जा रहा है । बालक के मानसिक व शारीरिक विकास में शुद्ध पौष्टिक एवं उपयुक्त भोजन का विशेष महत्व है । अतः विद्यालय को बालक के संतुलित विकास के लिये उत्तम भोजन की यथा सम्भव व्यवस्था करनी चाहिये ।

विद्यालय में भोजन की व्यवस्था हो जाने पर अध्यापक बालक में स्वास्थ्य भोजन सम्बन्धी आदतों जैसे स्वच्छ हाथों से भोजन करना और भोजन को चबा-चबा कर खाना आदि का निर्माण कर सकता है जो उसके स्वास्थ्य के बनाये रखने में सहायक होती है । यदि विद्यालय में भोजन की उचित व्यवस्था नहीं है तो बालक को भोजन के लिये घर जाना पड़ता है । जलपान गृहों तथा दूकानों पर जाने में अधिक समय लगता है तथा उचित समय पर विद्यालय में उपस्थित होने में भी कठिनाई होती है । बालक आने-जाने के श्रम के कारण थक जाता है ।

शिक्षक का कर्तव्य

शिक्षक को छात्रों के भोजन के समय का व्यवहार तथा उनकी सामाजिक अभिवृत्तियों को सुन्दर आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना चाहिये । शिक्षक की चाहिये कि वह छात्रों की व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी भी प्राप्त कर ले । शिक्षक के अन्तर्गत भोजन समिति स्थापित कर छात्रों का भोजन प्रबंध में सहयोग देना चाहिये । इससे छात्रों को अनुभव होगा कि भोजन प्रबन्ध किस प्रकार करना चाहिये।

बालाहार–योजना––

भारत में तथा विश्व के कई देशों में यह योजना चल रही है। सी० ए० आर० ई० के द्वारा भारत में दलिया तथा सोयाबीन तेल आदि दिया जाता है। कुपोषण को सुधारने के लिये यह योजना चलाई गई है। कुपोषण से लाखों बच्चों के आँखों की रोशनी कम हो जाती है, उनकी हड्डियों का विकास रुक जाता है। भारतवर्ष में बालाहार योजना ही मध्याह्न की योजना है। सोयाबीन में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है बच्चों को प्रोटीनयुक्त भोजन सेम, दालें मटर सोयाबीन आदि देना चाहिये। भींगे चने, हरी कच्ची सब्जियां, टमाटर, गाजर मूली पालक खीरा उबली हुई मूंगफली आदि विटामिन युक्त भोजन मध्याह्न में बालक को देना चाहिये। बलाहार योजना में यह सब चीजें देनी चाहिये जिससे बालकों को मध्याह्न का भोजन भी मिलेगा इसके साथ ही साथ अधिक प्रोटीन भी प्राप्त कर लेंगे। इससे बच्चे स्वस्थ रहेंगे और विद्यालय का वातावरण भी स्वस्थ रहेगा।

संतुलित भोजन––

भोजन के प्रत्येक तत्व को कितनी मात्रा एवं अनुपात में लिया जाय जिससे शरीर का विकास संतुलित हो, को संतुलित भोजन कहते हैं। भोजन के प्रमुख तत्व निम्न हैं:

(1) प्रोटीन––

यह कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन नाइट्रोजन, गन्धक और फास्फोरस का यौगिक है। नाइट्रोजन केवल प्रोटीन में होता है इसलिये इसे नाइट्रोजन वाला भोजन तत्व भी कहते हैं।

उपयोग––

शरीर की तन्तुओं और उसकी टूटफूट की क्षतिपूर्ति में प्रोटीन का उपयोग होता है। यह जीव द्रव का निर्माण करता है, प्रोटीन से ही पाचक रसों, हार्मोनों और प्रणाली–विहीन ग्रंथियों के रसों का निर्माण होता है।

स्रोत––

जीवों में प्रोटीन तत्व स्थित होने के कारण यह सब उन भोज्य पदार्थों में पाया जाता है जो आमिष या वानस्पतिक सजीव पदार्थ या उनके अंश होते है सामान्य निरामिष–भोजन प्राप्त प्रोटीन अमिष भोजन प्राप्त प्रोटीन की अपेक्षा कम उपयोगी है।

कार्बोहाइड्रेट––

इसमें सभी प्रकार के शक्कर शामिल हैं। इसमें कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन वे ही हैं जो वसा के निर्माण में निहित हैं।

उपयोग––

शरीर में शक्ति एवं गर्मी उत्पन्न करता है। जब मांस पेशियों के परिश्रम का काम अधिक होता है, कार्बोहाइड्रेट पाचन द्वारा ग्लूकोज में परिवर्तित होते हैं और शोषण के बाद रक्त द्वारा मांस पेशियों के पास जाते हैं, जहां उपयोग में लाये जाते हैं।

स्रोत––

इसके मुख्य स्रोत आलू, चावल, गेहूं, ज्वार, मक्का, साबूदाना और अरारोट है।

वसा––

यह भी कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर बना है। वसा में वसाम्ल और ग्लिसरीन होते हैं। जब वसा पर क्षार असर करता है तो साबुन और ग्लिसरीन उत्पन्न होता है।

उपयोग--

इसका मुख्य उपयोग शरीर को गर्मी और मांस पेशीय शक्ति पहुंचाना है ।

स्रोत—

मुख्य साधन मक्खन, घी, पनीर, सरसों का तेल और तिल आदि हैं ।

खनिज लवण—

यह शरीर भाग के लगभग २०वें भाग का निर्माण करते हैं और शरीर के लिये अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक हैं । शरीर में इनकी निम्न उपयोगिता है :

1--पाचक रसों को उत्प्रेरित करना ।

2--मांस पेशियों, स्नायुओं और रक्त का बल बनाये रखना ।

3--शरीर के सामान्य विकास में योग देना ।

4--तेजाब और क्षार का सन्तुलन बनाये रखना ।

कैलशियम फास्फेट, लोहा, आयोडीन, सामान्य लवण, मैग्नीशियम तथा गन्धक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

विटामिन—

ये अनेक प्रकार के प्राकृतिक भोज्य पदार्थों में पाये जाते हैं और शरीर तथा स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं । अभी तक 6 प्रकार के विटामिन पाये जाते हैं ए० बी० सी० डी० ई० के ये विटामिन शरीर के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं ।

# 2—राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता

## राष्ट्रीय भावात्मक एकता का अर्थ एवं ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि—

"राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता एक मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत जनता के हृदय में एकता संगठन और संशक्ति (cohesion) की भावना, एक समान नागरिकता की अनुभूति तथा राष्ट्र के प्रति वफादारी की भावना का विकास आता है।" इन्हीं शब्दों में 1961 में राष्ट्रीय एकता सम्मेलन में राष्ट्रीय एकता की व्याख्या की गई थी।

उपर्युक्त बात को सरल शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता का भाव एक मानसिक दृष्टिकोण या अभिवृद्धि है जो सीखने से और अनुभव करके धीरे-धीरे उदय होती है। इसके विकास में शिक्षा का सबसे अधिक योगदान होता है। इस अभिवृत्ति के अन्तर्गत कई बातें आ जाती हैं जैसे एक देश में रहने वाले सभी जन धार्मिक, सामाजिक, भाषाई तथा जातिगत सभी भेदों को भुलाकर परस्पर भाई-भाई होने की भावना से प्रेरित हो उठते हैं। उनके हृदय में ये भाव होता है कि हम किसी भी परिस्थिति में चाहे वह व्यक्तिगत स्वार्थ, चाहे विदेशी शत्रु से उत्पन्न हुई हो, एक दूसरे से टूट कर अलग नहीं होंगे। हमारा देश एक है, हम उसके नागरिक हैं और नागरिक की हैसियत से हमारी जिम्मेदारी है। उस राष्ट्र के साथ हम किसी भी दशा में दगाबाजी नहीं करेंगे।

पर आज हमारे देश में इस भावना की कमी आ गई है और हमारे देश में विघटन-कारी तत्व उत्पन्न हो गये हैं। सामान्य जीवन के स्तर पर भारत के नागरिकों की विचित्र स्थिति है। हर भारतीय अपने 'स्व' की दीवारों के बीच बन्दी है। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नीचे से नीचे स्तर तक अर्थात् पशु के स्तर तक आ सकता है। उनके मन में यह अनुभूति नहीं होती है कि भारत का हित अपना हित है। मुनाफाखोरी, चोरबाजारी और संचय द्वारा अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को सन्तुष्ट करना इस बात का द्योतक है कि देश में राष्ट्रीय एकता की कमी है। एक भाषा बोलने वाले, एक धर्म मानने वाले एक जाति एक वर्ग के लोग अपनी भाषा, धर्म, जाति और वर्ग के दायरे में सीमित हो गये हैं। जब तक इस देश में रहने वाले 60 करोड़ लोग इस विशाल समुद्र की एक लहर बन कर तिरोहित नहीं हो जाते यह समस्या नहीं सुलझेगी।

## ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि—

भारत की स्थिति दूसरे राष्ट्रों की तुलना में कुछ भिन्न है। यहां के लोग सभी तत्वों में जो आमतौर पर राष्ट्रत्व के लिए आवश्यक समझे जाते हैं एक दूसरे से भिन्न हैं। भारत कभी भी पूरे देश में एक भाषाई नहीं रहा न तो सबका धर्म ही एक न रहा और न भौगोलिक दृष्टि से किसी एक केन्द्र से शासित रहा। देश के विभिन्न भागों में जाति विशेषताएं, भोजन, परम्परागत आदतें, पहनावे, रीतिरिवाज सभी भिन्न रहे हैं। पर इन सभी विभिन्नताओं के बावजूद करीब दो हजार वर्ष या इससे भी अधिक समय तक भारतीयों में भारतीयता की एक आम भावना रही जो इन सब भेदों को लांघ कर विभिन्न भारतीय संप्रदायों और वर्गों को एक राष्ट्र बना दिया। अति प्राचीन काल में राष्ट्रत्व की अनुभूति का कारण यहां की प्रादेशिक अखंडता की अनुभूति थी। हमारे यहां के प्राचीन कवियों से लेकर वर्तमान कवियों तक के मन में भारत मां की कल्पना रही है। यहां के कवि अपने महाकाव्यों जैसे रामायण और महाभारत द्वारा देश की एकता की अनुभूति कराने के लिए विभिन्न स्थानों के वर्णन देते हैं और उनकी महिमा गाते हैं। उत्तरवासी राम दक्षिण में जा कर कुमारी अन्तरीप पर शिव और समुद्र की अर्चना करते हैं। पांडवगण सारे देश का भ्रमण करके यह आभास देते हैं कि हमारा देश एक है। कवियों ने भारत माता की मूर्ति का मोहक वर्णन करते हुये विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओं को भारत मां का अंग और शृंगार माना है। जैसे हिमालय मुकुट, गंगा यमुना कंठहार विन्ध्याचल मेखला तथा हरे भरे मैदान धानी अंचल हैं और कुमारी अन्तरीप उनके चरण हैं जिन्हें समुद्र अपने पवित्र जल से धोया करता है। भारत मां की यह

मूर्ति करोड़ों के हृदय में निवास करती है और राष्ट्रीय भावात्मक एकता का आधार है। देश के कोने-कोने में फैले हुमारे तीर्थ स्थान हैं और भारतवासी चाहे जिस कोने में हो इनके प्रति श्रद्धा रखते हैं।

प्रादेशिक अखंडता का भाव सदा ही हमारे हिन्दू मुसलमान शासकों के मन में रहा है। बड़े-बड़े हिन्दू सम्राट इस प्रादेशिक एकता करने की चरमावस्था को अश्वमेध यज्ञ द्वारा प्रगट करते थे। अशोक, चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, हर्ष आदि सम्राटों ने प्रादेशिक अखंडता के लिये सदैव प्रयत्न किया। अकबर महान के हृदय में इस देश की राष्ट्र के रूप में एक तसवीर थी और उसने सारे देश को एक झन्डे के नीचे लाने का प्रयत्न किया। कई हजार मील लम्बे चौड़े भारत में विभिन्न विचारों, धर्मों संस्कृतियों और भाषाओं की जन्म स्थली होते हुये भी प्राचीन काल से आज तक इन विभिन्नताओं को एकता में आत्मसात करने की प्रवृति भी चलती रही है। अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। यही कारण है कि विरोधों के बने रहने के बावजूद भारत में कभी भी विस्फोटक स्थित नहीं पैदा हुई।

स्वतंत्रता के पूर्व महात्मा गांधी ने सारे भारत के सामने स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य प्रस्तुत कर सारे देश को राष्ट्रीय भावना से भर दिया था। आजादी के बाद यह लक्ष्य पूर्ण हो गया और आज फिर यह भावना क्षीण हो गई है। अब भी संकट आने पर यह भावना प्रबल हो उठती है जैसे चीन और पाकिस्तान युद्ध के समय दिखाई पड़ी थी। इस समय सारा देश धर्म जाति और वर्ग को भूल कर एक 'व्यक्ति' के रूप में उठ खड़ा हुआ और शत्रुओं को परास्त किया।

राष्ट्रीय तथा भावात्मक भावना के कमी के कारण--

1--देश की विशालता--यह विशाल देश है और आज भी यातायात और आवागमन के साधन होते हुये भी उत्तर के एक गांव में रहने वाला दक्षिण के गांव वासी से भावात्मक एकता का अनुभव नहीं कर पाता।

2--धर्म, सम्प्रदाय, संस्कृति और जाति भेद--उपर्युक्त आधार पर बनी इकाइयां राष्ट्रीय जीवन से अलग अपनी सत्ता समझती हैं और राष्ट्रीय जीवन में विलीन होने को तयार नहीं।

3--भाषाई विवाद--इसके पीछे भी दलगत राजनीत है और यह भी राष्ट्रीय भावनात्मक एकता में बाधक है।

4--देश की बदली परिस्थितियां तथा मनोवैज्ञानिक भय--आजादी प्राप्ति के बाद 'एकोद्देश्यता' (आजादी पाने का उद्देश्य) जो सब को एक सूत्र में बांधे थी ढीली पड़ गई। सत्तारूढ़ दल एक स्पष्ट उद्देश्य जनता के सामने न रख सका।

5--आर्थिक विषमताएं--देश में जो आर्थिक विकास की सुविधाएं हैं उनका समान रूप से वितरण नहीं है।

6--चारित्रिक गिरावट--यदि गहराई से देखा जाय तो राष्ट्रीयता के अभाव का मूल कारण आम जनता की चरित्र की दुर्बलता है।

1961 का समय राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस वर्ष राष्ट्रीय एकता समिति तथा राष्ट्रीय एकता सम्मेलन दोनों हो हुये। 1961 में राष्ट्रीय एकता समिति डा० सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में बैठाई गई। इस समिति ने राष्ट्रीय भावात्मक एकता में शिक्षा के योगदान का निश्चय करने के लिए 100 सदस्यों को बुलाया। दिसम्बर 1961 में उसने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिनमें मुख्य ये हैं--

1--राष्ट्रीय एकता को शिक्षा से बढ़ावा मिलता है अतः प्राथमिक शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था की जाय। अनुसूचित और पिछड़ी जन जातियों के लिए दस वर्ष तक शिक्षा को विशेष सुविधा दी जाय।

2--शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश तथा छात्रवृत्तियां योग्यता के आधार पर हों जाति धर्म संप्रदाय का विचार न किया जाय ।

3--प्रवेश के लिये प्रार्थना-पत्रों में जाति-धर्म कोष्ठकों को हटा दिया जाय ।

4--प्रतिदिन शिक्षा संस्था का कार्य अध्यापकों, छात्रों तथा प्रधानाचार्यों के सामूहिक एकत्र होने से आरम्भ हो । इसमें महापुरुषों के जीवन की चर्चा करें । राष्ट्र गान हो और राष्ट्रीय झंडे की कहानी सुनाई जाय ।

5--हर राज्य में दूसरे राज्यों के छात्र का प्रवेश बिना बाधा के हो ।

1961 के सितम्बर-अक्तूबर में श्री जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकता सम्मेलन हुआ जिसमें 153 विद्वानों ने भाग लिया । इस सम्मेलन में राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में शिक्षा तथा शिक्षक के निम्न दायित्व निश्चित हुए :

1--पाठ्य पुस्तकें क्षेत्रीय दृष्टि के स्थान पर राष्ट्रीय दृष्टि से लिखी जाय ।

2--माध्यमिक शिक्षा क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से दी जाय ।

3--पुस्तक लेखन में परामर्श देने हेतु राष्ट्रीय सलाहकार बोर्ड बनाया जाय ।

4--अल्प संख्यकों की भाषा के माध्यम से शिक्षा देने वाली शिक्षण संस्थाओं का दूसरे राज्यों की शिक्षा परिषदों या विद्यालयों से सम्बन्ध होने की छूट दे दी जाय ।

5--एक राज्य के विश्वविद्यालय दूसरे राज्य के छात्रों को प्रवेश दें ।

6--शिक्षा को राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्र का अंग होने का भाव विकसित करना चाहिए ताकि हमारे नवयुवक उत्तम नागरिक बन सकें ।

7--हर रोज विद्यालय का कार्य राष्ट्र गान से प्रारम्भ हो ।

शिक्षक की भूमिका--

श्री हुमायू कबीर ने राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करने के लिये पाठ्यक्रम में सुधार को आवश्यक बताया था । उनके मत से पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो वर्ग भेद को दूर करें । सभी वर्गों को शिक्षा के समान अवसर दिये जायं और सरकारी नौकरी में इन वर्गों को स्थान दिया जाय ।

उनके विचार से राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करने में विश्वविद्यालयों का भारी योगदान हो सकता है । भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री श्री छागला ने भी कहा है कि देश में अलगाव का भाव ऐतिहासिक दौर में हुआ है और इसे शिक्षा द्वारा दूर किया जा सकता है ।

शिक्षा को राष्ट्रीय एकता का सर्वोत्तम साधन मान लेने पर यह निष्कर्ष सहज ही निकलता है कि शिक्षक ही यह कार्य कर सकता है । कक्षायें पढ़ाते समय अध्यापक जो भावना छात्रों में भर सकता है वह स्थायी होता है । अनुदारता, असहिष्णुता, पक्षपात, व्यक्तिगत स्पर्धा के भाव बहुत अंशों में विद्यालय स्तर से ही उत्पन्न होते हैं । इनसे राष्ट्रीय एकता नष्ट होती है । इन सबका निदान शिक्षक कर सकता है । बालकों की अभिवृत्तियां (attitudes) के विकास में उसका बड़ा हाथ है । अतः अध्यापक बच्चों के हृदय से वर्गीय, जातीय, साम्प्रदायिक और धार्मिक भेद-भाव के दोषों को दूर कर सकते हैं । विभिन्न विद्यालयों में पढ़ाते हुये वे तटस्थ भाव से इतिहास तथा सामाजिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुये छात्रों के दृष्टिकोण उदार बनाने की चेष्टा करें और समन्वय करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करें तभी राष्ट्रीय एकता का

भाव पुष्ट हो सकता है । अध्यापक विद्यालयों के समाज में भारतीयता के भाव को उत्पन्न करें और वहां के वातावरण में उन पूर्वाग्रहों को नष्ट किया जाय जो राष्ट्रीय जीवन को हानि पहुंचाते हैं । इसके लिये निम्न कार्यक्रम प्रस्तावित हैं--

1--विद्यालयों में भारत के सभी भागों के महापुरुषों की जयन्ती मनाई जाय ।

2--शिक्षा के हर स्तर पर देश दर्शन के कार्यक्रम छुट्टी में आयोजित हों । देश दर्शन के कार्यक्रम को वृत चलचित्रों द्वारा भी पूरा किया जा सकता है ।

3--छात्रों को स्वेच्छा से कई भाषा सीखने की प्रेरणा देना चाहिये ।

4--धार्मिक शिक्षा का मिला जुला कार्यक्रम बने जिसमें सभी धर्मों की उत्तम शिक्षाओं का संकलन हो ।

5--राष्ट्रीय एकता दिवस मनाया जाय ।

6--अखिल भारतीय स्तर पर छात्रों का संगठन आयोजित किया जाय और कुछ कार्यक्रम भी चलाये जायं ।

7--सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी को स्वेच्छा से अपनाने का अनुरोध सारे भारत में किया जाए ।

## नैतिक शिक्षा

भूमिका--नैतिक शिक्षा से आज सामान्यतः बालक की मानसिक, नैतिक, शारीरिक आदि क्षमताओं का ऐसा विकास अभीष्ट है जो उसे पूर्ण समाजोपयोगी व्यक्ति बना सके । आज विश्व में परिवर्तन, गतिशीलता, संघर्ष और जटिलतायें अधिक हैं । ऐसे समय में जब कि जीवन में सभी कुछ अस्थिर और गतिशील है, बालक में नैतिक चेतना का विकास किया जाय । नैतिक समन्वय समाज के संरक्षण एवं विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है । अनुशासन और नैतिकता का घनिष्ठ सम्बन्ध है । उन्मुक्तता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देती है । यदि हम इसके साथ परहित को जोड़ दें तो नैतिकता का क्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है । नैतिकता के विकास के लिए स्वार्थ के ऊपर परहित का व्यापक दृष्टिकोण रखा जाना लाभकारी होगा ।

आवश्यकता--आज के वैज्ञानिक तथा तकनीकी युग में व्यक्ति के कार्य की अपेक्षा अवकाश का समय बढ़ रहा है । विज्ञान ने उसके कार्य को सरलतम एवं यांत्रिक बना दिया है । आज हमारे समक्ष नैतिकता का संकट उपस्थित है । यहां हमें निराशा और नैतिक कमजोरी ही अधिक दिखाई देती है । प्राचीन सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं, विचारों आदि में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए हैं । अतः पूर्ववत् सुरक्षा पाने के लिए नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य ही जीवन में बालक का मार्गदर्शन कर सकेंगे । हमारे बहुतत्वीय समाज में प्रत्येक व्यक्ति सुरक्षात्मक स्तम्भ, मूल्यों सम्बन्धी निश्चिन्तता तथा मार्ग दर्शन चाहता है जिसे नैतिक शिक्षा के द्वारा ही उपलब्ध कराया जा सकता है । हमारे समाज में नैतिक कार्यों को प्रेरणा देने वाले उत्प्रेरक दिखाई नहीं पड़ते । दण्ड, दुख, बीमारी, भुखमरी, धर्म आदि का डर प्रायः समाज को नहीं है । अतः यह आवश्यक है कि नवीन उत्प्रेरकों को स्थापित किया जाय । क्योंकि नैतिक शिक्षा का सम्बन्ध उत्तम तथा प्रभावी उत्प्रेरकों से है ।

भारत में वर्ग संघर्ष अनादि काल से चला आ रहा है जिसके साक्षी पुराण हैं । भारत एवं संसार के अन्य देश भी युद्ध एवं संघर्ष से पीड़ित रहे हैं इसका विपरीत प्रभाव बच्चों के मस्तिष्क पर पड़ता है । विघटन और महंगाई में दबे समाज का झुकाव भौतिकता और अर्थवाद की ओर अधिक हो रहा है । कानून और अधिकारों के प्रति आदर कम होता जा रहा है ।। इसको रोकने के लिये नैतिक शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है ।

आज अध्यापक में प्राचीन गुरुओं की भांति नैतिक गुणों का अभाव होता जा रहा है जिसका सीधा प्रभाव बालक और विद्यालय के अनुशासन-प्रशासन पर पड़ रहा है । इस दुष्प्रभाव

के निवारणार्थ बालक की प्रारम्भिक अवस्था में नैतिक शिक्षा दिया जाना आवश्यक है। पाश्चात्य शिक्षाविद् हरबार्ट ने कहा है कि हमारी शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य नैतिकता ही होनी चाहिये--

"Morality is universally acknowledged as the highest aim of humanity and consequently of education."

(Herbart)

इतिहास--प्राचीन एवं अर्वाचीन भारत में शिक्षा और धर्म में घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। प्राचीन शिक्षा पद्धति (आश्रम एवं गुरुकुल पद्धति) में नैतिक शिक्षा से ही शिक्षा आरम्भ की जाती थी। इस नतिक शिक्षा का बालक के जीवन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता था कि वह अपने जीवन की सर्वोच्च स्थिति में पहुंचने के बाद भी नैतिक शिक्षा के शाश्वत मूल्यों को नहीं भूले। गुरू संदीपन, कृष्ण-सुदामा, वशिष्ट और राम, गुरू द्रोण और अर्जुन, समर्थ गुरू रामदास और शिवाजी आदि इसके ज्वलन्त उदहरण हैं।

हिन्दू तथा मुस्लिम कालों में धर्म की शिक्षा देना शिक्षा का अभिन्न अंग रहा है--'विश्वविद्यालय आयोग प्रतिवेदन 1948-49'। इससे स्पष्ट है कि मध्यकाल में धार्मिक शिक्षा के माध्यम से बालक के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने के प्रयास किये जाते थे। उसे नैतिक तथा धार्मिक जीवन के तत्वों तथा सिद्धान्तों से परिचित करा कर उसमें नैतिकता तथा धार्मिकता का विकास किया जाता रहा है।

ब्रिटिश शासनकाल में शिक्षा के क्षेत्र में धर्म निरपेक्षता की नीति का अवलम्बन किया गया। यह नीति मिशनरियों को रुचि कर नहीं लगी क्योंकि वे भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना चाहते थे। 1854 के 'वुडडिस्पैच से स्पष्ट है कि भारत में अंग्रेजी शासन नैतिकता के विकास हेतु धार्मिक शिक्षा देने के पक्ष में नहीं रहा। 1882 के हंटर कमीशन' ने इस नीति का समर्थन किया है। केन्द्रीय सलाहकार परिषद् ने भी नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा के महत्व एवं आवश्यकता को स्वीकार किया है।

प्राचीन नैतिक शिक्षा का प्रभाव इतना गहन था कि वह भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक यत्र-तत्र हमारी पाठ्य पुस्तकों में परिलक्षित होता रहा है। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद ही नैतिक मूल्यों में ह्रास आरम्भ हो गया। अब व्यक्ति सुख-दुख, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, जो हमारी धार्मिक पुस्तकों के आधार रहे हैं, से भयभीत हो गया है। भारत के संविधान की धारा 22 में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि शासन के धन से चलने वाली किसी भी शिक्षण संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकेगी। स्वान्त्रता के बाद देश में धर्म निरपेक्षता पर बल दिया गया। फलस्वरूप शालाओं में धर्म की शिक्षा को स्थान न दिया गया। इसका एक कारण यह भी था कि हमारा देश बहुधर्मी राष्ट्र है। सभी धर्मों का आदर और धार्मिक सहिष्णुता का विकास आवश्यक है। सभी धर्म समान रूप से मान्य किये गये हैं। शालाओं में अनेक धर्मावलम्बी बालक-बालिकाओं को शिक्षा दी जाती है। यही कारण है कि भारत में स्वतन्त्रता के बाद भी शालाओं में धार्मिक शिक्षा का कोई स्थान नहीं रहा। गांधी जी ने अपनी वरधा योजना में किसी धर्म विशेष की शिक्षा को कोई महत्व नहीं दिया। गांधी जी ईश्वर तथा प्रार्थना में आस्था अवश्य रखते थे परन्तु उनका विचार था कि जीवन को नैतिक एवं आध्यात्मिक बनाने हेतु सभी धर्मों की शिक्षाओं का ज्ञान होना चाहिए। अतः बच्चों को नैतिक बनाने के लिये सर्व जनीन धर्म का माध्यम अपनाया जाय।

जाकिर हुसेन समिति, विश्वविद्यालय आयोग (राधाकृष्णन कमीशन) 1948-49, माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन) 1952-53, मूल्यांकन समिति, 1956 शिक्षा आयोग 1964-66 (कोठारी आयोग) ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष नैतिक शिक्षा के शिक्षण को आवश्यक माना है। यह नैतिक शिक्षा सभी धर्मों की उत्तम बातों के शिक्षण, सार्वजनिक प्रार्थना शाला के वातावरण को उन्नत करके तथा बालकों के समक्ष उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करके दी जा सकती है। कोठारी आयोग ने शालाओं में योजनाबद्ध रूप से नैतिक शिक्षा शिक्षण को प्रारम्भ करने का सुझाव दिया है।

नैतिक शिक्षा का स्वरूप--शिक्षा का मुख्य लक्ष्य बालक के व्यक्तित्व का संतुलित और स्वस्थ विकास करना है । इसके लिये बालकों में स्वास्थ्यवर्धक आदतों, सद्गुणों, सही अभिरुचियों मूल्यों के निर्माण और विकास पर बल दिया जाना चाहिए। नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों के विकास के लिये समाज भी उतना ही उत्तरदायी है जितना शिक्षालय । भारत में इस समय धर्म निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता तथा गणतन्त्र ये तीन मुख्य प्रेरक सिद्धान्त विशेष रूप से सक्रिय हैं । इन बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों में शाश्वत मूल्यों के विकास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे बालक स्वतन्त्र नागरिक बन सके । बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने के लिए हमें ऐसी शिक्षा देनी होगी जो धर्म निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता तथा गणतंत्रात्मक भावों को अंकुरित करने में सक्षम हो । बालक में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जागृत करनी होगी । इसके लिये बालक के एक से आठ तक के पाठ्यक्रम में सत्य, दया, आदर, समय पालन, अनुशासन, सहयोग, ईमानदारी, स्वच्छता, राष्ट्र प्रेम जैसे मूल्यों एवं गुणों का समावेश होना आवश्यक है । हर्ष का विषय है कि देश के शिक्षाविदों, विचारकों राजनेताओं का ध्यान इस ओर गया है । शिक्षा में नैतिक मूल्यों को स्थान देते समय विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों, जटिलताओं एवं समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है । जैसे सद्ग्रंथों के किन अंशो को मान्यता दी जाय जिसमें शाश्वत मूल्य विशेष महत्वपूर्ण हों। नैतिक शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो जिनसे ज्ञान की वृद्धि हो और व्यावहारिक पक्ष भी सुदृढ़ हो समाज में नैतिक शिक्षा का भार परिवार और विद्यालय पर आधारित है । ग्रामीण क्षेत्र के अभिभावक को जागरूक बनाने के लिये शिक्षक और अधिकारियों को प्रयत्नशील होना होगा ।

---

उत्तर प्रदेश शासन ने वर्ष 1980 की जुलाई से आरम्भ होने वाले सत्र से सभी प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के विषय को अनिवार्य विषय में सम्मिलित कर दिया था । राज्य शिक्षा संस्थान में 1 से 8 तक के पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा की पाठ्य-पुस्तकें लिखी गई हैं । चरित्र निर्माण में शाश्वत मूल्यों के महत्व पर विचार के साथ-साथ नैतिक शिक्षा में योग को भी सम्मिलित करने पर विचार हो रहा है । यौगिक क्रियाओं का महत्व शरीर निर्माण से कहीं अधिक आध्यात्मिक विकास में है । अतः इसकी शिक्षा व्यायाम के माध्यम से देनी चाहिए । नैतिक शिक्षा में इसके समावेश से भय है कि नैतिक शिक्षा का पाठ्यक्रम बोझिल और अरुचिकर न हो जाय साथ ही शिक्षक का ध्यान नैतिकता के मुख्य बिन्दु से हट कर शारीरिक क्रियाओं में ही न भटक जाय ।

## 3--विद्यालय स्तरीय समस्यायें

वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षा के उन्नयन एवं प्रचार के अनेक प्रसार किए जा रहे हैं। किन्तु हमारे देश में शिक्षा प्रसार की अनेक समस्यायें हैं। उनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं--

1--भौतिक समस्यायें--इसके अन्तर्गत विद्यालय भवन मरम्मत, नव निर्माण साज-सज्जा, जल, उपकरण आदि की समस्यायें हैं। आवश्यकता को देखते हुये उक्त समस्यायें बहुत अधिक प्रभावित कर रही हैं।

(i) भवन--सर्वेक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अब भी देश में अनेक प्राथमिक विद्यालय खुले मैदान में चलते हैं। जिनमें भवन है, वह भी अपूर्ण व अपर्याप्त हैं। जो हैं वे गिर रहे हैं। देश में केवल 30 प्रतिशत भवन ऐसे हैं, जिनको अध्ययन के लिए उपर्युक्त कहा जा सकता है।

मरम्मत--भवनों की दशा इतनी जीर्ण व खराब है कि बालकों को शिक्षा देना भी समस्या है। उनकी मरम्मत के लिये कोई धन नहीं स्वीकृत है। जो धन उपलब्ध है, उसका सही उपयोग भी नहीं हो पाता। मरम्मत न होने से अनेक विद्यालय खंडहर मात्र रह गये हैं।

नव निर्माण--नये भवनों के निर्माण का प्राविधान सरकार द्वारा होता है किन्तु धनाभाव या अपव्यय के कारण वह पूर्ण नहीं हो पाते हैं। साथ ही विद्यालय जन संख्या की वृद्धि के साथ बढ़ रहे हैं, लेकिन उतनी ही संख्या में भवनों का निर्माण नहीं हो पा रहा है।

साज-सज्जा--विद्यालयों में पाठन सामग्री का इतना अभाव है कि बालकों को बैठने हेतु टाट-पट्टी पढ़ने हेतु श्यामपट् तक बहुतायत विद्यालयों में नहीं है। पूर्ति के प्रयास किये जाते हैं, किन्तु संख्या की दृष्टि से वह अंश मात्र है।

पेयजल--देश के अनेक प्राथमिक विद्यालयों में बालकों के पानी पीने तक का उचित प्रबन्ध नहीं है। उन विद्यालयों में न तो पाइप है न कुआं। पर्वतीय क्षेत्रों में तो पानी की विकट समस्या है। बच्चों को अपने-अपने घरों से लेकर जाना पड़ता है। कहीं-कहीं हैन्ड पम्प की व्यवस्था है, लेकिन वे सभी सूखे पड़े हैं।

शैक्षिक उपकरण--उपकरणों के नाम पर तो प्राथमिक विद्यालय शून्य हैं। किसी भी विद्यालय में चार्ट पोस्टर माडल आदि का कहीं पता नहीं है। सरकार प्रयास कर रही है।

पुस्तकालय एवं वाचनालय--माध्यमिक स्तर पर तो कहीं-कहीं पुस्तकालयों एवं वाचनालयों की व्यवस्था है किन्तु प्राथमिक स्तर पर किसी भी विद्यालय में इसकी कोई व्यवस्था नहीं है विद्यालयों में इतने अधिक साधन नहीं हैं कि वे इसका व्यय वहन कर सकें।

पाठ्यक्रम का नवीनीकरण एवं पाठ्य-पुस्तकों का अभाव--प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम के सुधार के लिये इतनी जल्दी-जल्दी प्रयोग होते रहते हैं कि कोई एक स्थायी पाठ्यक्रम ही नहीं रह पाता जिसके कारण पाठ्य-पुस्तकें भी उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम प्रयोगशाला में ही बनता बिगड़ता रहता है। इतना लम्बा व भारी पाठ्यक्रम है कि वह छोटे बालक की बुद्धि व क्षमता के बाहर है कि वह उसे बोधगम्य कर सकें। पाठ्यपुस्तक भी इतनी उपलब्ध नहीं हो पाती अनेक बच्चे बिना पाठ्य-पुस्तकों के ही विद्यालय जाते हैं।

प्रयोग की भरमार एवं प्रभावहीन शिक्षण विधियां--शिक्षा में इतने नये प्रयोग हो रहे हैं कि कभी कोई नाम निर्धारण नहीं हो पाता है। प्राथमिक स्तर के बालक तो प्रयोग के उपकरण मात्र हो गये हैं। अनेक नये प्रकार की योजनायें एवं प्रयोग हो रहे हैं। उनका बोझ अध्यापकों एवं छात्रों पर पड़ रहा है।

शिक्षा की शिक्षण विधियां प्रभावहीन हैं । जो भी शिक्षण विधियां वर्तमान विद्यालयों में अपनाई जा रही हैं, वह पाठ्यक्रमानुकूल नहीं हैं । बच्चों के मानसिक स्तर रुचि एवं क्षमता के अनकूल प्रयुक्त शिक्षण विधि ही लाभप्रद हो सकती है किन्तु शिक्षण विधियां का यह दोष प्रयोगों के ही कारण है ।

निराकरण--उक्त समस्याओं से घिरा हुआ प्राथमिक शिक्षा का स्तर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है इसके उन्नयन के लिए सरकार कृत संकल्प है । शिक्षा विभाग अनेक प्रयोग गोष्ठी, परियोजनाएं चला रहा है । साहूकार से धन उदारता से प्राप्त हो रहा है । भवनों का निर्माण प्रारम्भ है । राज-रजा की पूर्ति की जा रही है । बुक-बैंक योजना चलाई गई है जिससे पाठ्य-पुस्तकें बालकों को उपलब्ध हो सकें । पानी की व्यवस्था के लिए भी कार्य प्रारम्भ है । पाठ्य-क्रम के दोषों को दूर करने के लिए तकनीकी सुधार प्रारम्भ हैं । उन्हीं के आधार पर अध्यापकों को पुनर्बोध कराया जा रहा है ।

2--छात्र अनुशासन की समस्या--किसी भी देश व समाज के छात्र सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं किन्तु आज समाज का यह अंग पथ भ्रष्ट हो रहा है । शिक्षा में यह एक समस्या है कि छात्र अनुशासनहीन होते जा रहे हैं । यह एक जटिल समस्या हमारे सामने है । छात्र ही भविष्य में राष्ट्र का कर्णधार होगा । किन्तु यदि कर्णधार का पथ ही भूला हुआ है तो देश भी गर्त में जाने से न बचेगा । छात्र अनुशासन की समस्या के लिए छात्र ही उत्तरदायी नहीं है । इसके लिए अनेक ऐसी परिस्थितियां बन गई है कि छात्र अपना कर्त्तव्य भूल गए हैं । राजनैतिक आर्थिक एवं सामाजिक चालों में छात्र फंसा हुआ है । इन्हीं षडयंत्रों में फंस कर छात्र आन्दोलन और तोड़-फोड़ करते हैं । अनेक ऐसे कारण हैं जिनसे छात्रों को अनुशासनहीन होना पड़ा है ।

छात्र असंतोष--मानव की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब कभी उसकी रुचियों, योग्यताओं एवं मूल प्रवृत्तियों पर कुठाराघात होता है तो उसमें एक प्रकार का तनाव व असंतोष उत्पन्न होता है । इसी कारण वर्तमान समय में छात्रों में कुछ कारणों तथा परिस्थितियों के कारण छात्रों में असंतोष पनप रहा है । यह असंतोष सामूहिक रूप से एकत्र होने पर हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक दोनों रूप से प्रकट होता है । जिसके भयंकर परिणाम--धन जनहानि होती है । छात्रों में विद्रोह की भावना बढ़ती है । युवा वर्ग की इसी प्रवृत्ति तथा आन्दोलनात्मक विचारधारा एवं कार्य-प्रणाली को छात्र असंतोष की संज्ञा दी गई है । इस असंतोष में निम्न तथ्य विद्यमान हैं :--

(1) समाज की आधुनिक अवधारणायें एवं व्यक्तिगत द्वंद्व ।

(2) जातिगत एवं अन्य प्रतिबंधों की अस्वीकृति ।

(3) परम्परागत नियमों की अस्वीकृति ।

(4) परिवार की महत्ता का कम होना ।

(5) धार्मिक महत्व की कमी ।

(6) शिक्षित युवकों का भाग लेना ।

(7) अहिंसात्मक एवं हिंसात्मक क्रियायें ।

(8) जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित असंतोष ।

(9) विघटनकारी सामूहिक व्यवहार ।

छात्र असंतोष के कारण—छात्र असंतोष के कारणों को मोटे रूप से 4 भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(1) सामाजिक, आर्थिक कारण।

(2) राजनैतिक कारण।

(3) शैक्षिक कारण।

(4) मनोवैज्ञानिक कारण।

सामाजिक आर्थिक कारण—इसके अंतर्गत निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं :—

(1) बेरोजगारी एवं महंगाई।

(2) आर्थिक असमानता।

(3) औद्योगीकरण के दुष्परिणाम।

(4) मनोरंजन के साधनों का अभाव।

(5) यातायात एवं संदेशवाहनों में वृद्धि।

(6) पारिवारिक जीवन का विघटन।

(7) सामाजिक कुशलतायें।

राजनैतिक कारण—राजनैतिक कारणों में निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं :—

(1) राजनैतिक जागरण।

(2) राजनैतिक दल।

(3) पुलिस विभाग की तानाशाही।

(4) सरकार की उदासीनता।

(5) प्रशासन में पक्षपात।

शैक्षिक कारण—

(1) विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का वातावरण।

(2) शिक्षा व्यवस्था के आधारभूत दोष।

(3) उच्च शिक्षा का निम्नस्तर।

(4) शिक्षा के नवीन प्रयोग।

(5) शिक्षा व्यावहारिक नहीं।

(6) परम्परागत शिक्षा।

(7) मूल्यांकन।

मनोवैज्ञानिक कारण—

(1) युवकों व छात्रों की मनोवैज्ञानिक प्रकृति।

(2) प्राचीन एवं नवीन दृष्टिकोण में अन्तर।

(3) छात्र शक्ति एवं साहस का दुरुपयोग।

(4) असुरक्षा की भावना ।

(5) मूल प्रवृत्तियों का दमन ।

(6) बदले की भावना ।

छात्र असंतोष दूर करने के उपाय--सरकार इस ओर पर्याप्त चिंतित है । समय-समय पर अनेक समितियां एवं आयोगों का गठन हुआ । उन्होंने अपनी-अपनी सिफारिशें प्रस्तुत किया । इस समस्या के समाधान हेतु अभिभावक, अध्यापक, छात्र एवं सरकार के मध्य आपसी विचार-विमर्श गोष्ठियों का आयोजन करना आवश्यक है । छात्रों में नैतिक शिक्षा का प्रसार किया जाय । अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान दिया जाय । उनका चारित्रिक विकास किया जाय । उन्हें राजनीति से दूर रखा जाय । बालकों में प्रयोग यह किया जाय कि असंतोष पनपने ही न पावे । उनकी रुचियों, क्षमताओं के अनुकूल शिक्षा पाठ्य-क्रम आदि बनाया जाय । उन्हें सही मार्ग दर्शन की आवश्यकता है । उक्त बातों के आधार पर निम्नलिखित कुछ सुझाव व उपाय हैं :--

(1) सामाजिक वातावरण में सुधार ।

(2) धार्मिक मूल्यों में परिवर्तन ।

(3) योग्य व ईमानदार अध्यापकों की नियुक्ति ।

(4) पाठ्य-क्रम में सुधार ।

(5) उचित प्रशासन ।

(6) अनुसंधान समितियों का गठन ।

(7) क्रियात्मक शिक्षा ।

(8) निर्देशन परामर्श ।

(9) व्यावसायिक सुविधा ।

(10) रोजगार हेतु मार्ग-दर्शन ।

(11) परीक्षा प्रणाली में सुधार ।

## 4--प्रशासनिक समस्या

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा में विकास हुआ है और सरकार निरन्तर प्रयत्नशील है, किन्तु विशाल देश की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा का स्वरूप बनाने में कठिनाइयां हैं। प्रशासन की भी एक समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। विद्यालयों की संख्या तथा उनमें छात्रों की संख्या के अनुकूल उनका पूर्ण व्यवस्थित प्रशासन होना बड़ा ही दुष्कर है। प्रशासन में कोई हेर-फेर नहीं हुआ है, वही प्राचीन स्वरूप अब भी बना है। विद्यालयों में कहीं छात्र नहीं हैं तो अध्यापक अधिक हैं। कहीं अध्यापक नहीं हैं तो छात्र अधिक हैं। विद्यालयों में सही निरीक्षण नहीं हो पाता जो करते हैं वे सही व प्रत्यक्ष निरीक्षण नहीं करते हैं, उक्त समस्या के कुछ तथ्य निम्नवत् है :--

(क) छात्र अध्यापक अनुपात का असंतुलन होने से हानि--बहुधा यह देखा गया है कि विद्यालयों में छात्रों तथा अध्यापकों की संख्या में बहुत बड़ा असंतुलन है। अभी तक कोई अनुपात निर्धारित नहीं था। गांव में प्राथमिक विद्यालय खोल दिया जाता है जिससे सुविधा शिक्षा की तो हो जाती थी, किन्तु कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया गया कि वहां पूरे छात्र हैं या नहीं अथवा अध्यापकों की संख्या छात्रों के अनुकूल है या नहीं। किसी विद्यालय में जितनी कक्षायें हैं, उतने अध्यापक नहीं हैं, इसका मिटाने के लिए सरकार ने इधर ध्यान दिया है कारण यह है, इससे अनेक हानियां हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है :--

1--शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती।

2--बालकों की क्षमताओं का विकास नहीं होता।

3--समय व श्रम का दुरुपयोग।

4--केवल रटने की शिक्षा पर बल।

5--अध्यापक पर अधिक बोझ।

6--शिक्षा का सही-सही स्वरूप न होना।

7--ठोस व स्थायी ज्ञान की प्राप्ति न होना।

8--धन का दुरुपयोग।

9--बालकों का सर्वांगीण विकास नहीं होता।

मानक--उक्त हानियों पर जब सरकार का ध्यान गया तो सरकार ने इस ओर विचार विमर्श किया। गोष्ठी एवं समितियों का आयोजन किया गया जिससे यह निर्धारित किया गया कि विद्यालयों में छात्र अध्यापक असंतुलन नष्ट करने हेतु मानक का निर्धारण किया जाय, जिससे विद्यालयों में निर्धारित संख्या पर अध्यापक हों। इस मानक से यह होगा कि अध्यापकों का समायोजन भी हो जायेगा और बालको की संख्या में वृद्धि भी होगी। सरकार ने निर्धारित किया कि 40 या 45 छात्रों पर एक अध्यापक की नियुक्ति की जाय। प्राथमिक स्तर पर इस मानक का प्रयोग किया गया जिसमें अनेक ऐसे विद्यालय निकले, जिनमें छात्र बहुत कम और अध्यापक अधिक थे। समायोजन के उपरान्त कहीं-कहीं यह ज्ञात हुआ कि छात्र कम हैं और अध्यापक अधिक हैं। अतः छात्रों की वृद्धि की जाय। कहीं-कहीं छात्र अधिक थे अध्यापक कम थे अतः नई नियुक्तियां की गई। नये विद्यालय खोले गये।

प्राथमिक स्तर पर एक हानि यह भी हुई कि किसी विद्यालय में एक ही अध्यापक रह गया, क्योंकि वहां छात्रों की संख्या कम थी और कक्षायें 5 हो थी, अतः उसे ही सभी कक्षायें पढ़ानी पड़ती थी, यह उचित नहीं था। अतः वहां पर कम से कम दो अध्यापक नियुक्त किए गए।

वर्तमान शिक्षा विभाग की नीति--छात्र अध्यापक संतुलन को समाप्त करने के लिए वर्तमान शिक्षा विभाग भी कृत संकल्प है और प्रयास जारी है। शिक्षा विभाग ने एक सर्वेक्षण करवाया है जिससे समस्त बालकों की संख्या का भी आकलन किया गया है। शिक्षा विभाग ने इसी सर्वेक्षण के आधार पर मानक का प्रयोग किया है जिसमें प्राचीन चल रहे विद्यालयों का समायोजन किया गया है तथा अध्यापकों व निरीक्षकों को यह प्रेरणा दी गई है कि वह छात्र वृद्धि करें। जो बालक पढ़ नहीं रहे हैं, उनके माता-पिता को प्रेरित करें। सरकार नये विद्यालय भी खोल रही है, उनमें अध्यापकों की नियुक्तियां की जा रही हैं प्रशिक्षण की भी संख्या कम कर दी गई है, जिससे प्रशिक्षित अध्यापक बेरोजगार न रहें। अनेक गोष्ठियां तथा समितियां इसके लिए नियुक्त की गई हैं जो अपने सुझाव विभाग को दे रही हैं।

(ख) बहुकक्षा शिक्षण--यह वह कक्षा शिक्षण योजना है, जिसमें अध्यापक को एक साथ कई कक्षायें पढ़ाना पड़ती है।

उपयोगिता--प्रायः गांव छोटे हैं वहां विद्यालय खुल जाता है और गांव के बच्चे प्रवेश लेते हैं। वहां इतने बच्चे उपलब्ध नहीं होते कि कई अध्यापक कार्य कर सकें। अतः ऐसी स्थिति में एक ही अध्यापक कई कक्षाओं को दिन भर पढ़ाता है। यही एक विकल्प है अन्य कोई विकल्प नहीं है, किन्तु हमें इन समस्याओं का निराकरण करना है।

समस्यायें--

(1) पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तकें एक ही होने पर अध्यापक पूर्ण पाठ्यक्रम का अध्ययन नहीं करा पाता जिससे केवल मुख्य विषयों पर ही ध्यान दे पाता है।

(2) कक्षा मानीटरों पर अधिक आश्रित रहना।

(3) कक्षा 1 व 2 के बालकों का शिक्षा उपेक्षित।

(4) खेल-कूद तथा अन्य क्रिया-कलाप उपेक्षित रह जाते हैं।

(5) छात्र एकाग्रचित्त नहीं हो पाते।

(6) अध्यापक के अनुपस्थिति होने पर विद्यालय बन्द ही रहता है।

(7) बालकों की बुद्धि को भिन्नता पर कोई ध्यान नहीं दिया जा सकता।

(8) अध्यापक का कार्यभार बढ़ जाता है।

(9) क्षमता का ह्रास होता है।

(10) इस कार्य हेतु अध्यापक प्रशिक्षित नहीं हैं।

(11) विद्यालयों में स्थानाभाव।

(12) शैक्षिक उपकरणों का अभाव।

निराकरण के सुझाव--

कक्षाओं का संयोजन--प्रायः यह देखा गया है कि विद्यालयों में 1 व 5 कक्षा को तथा 2, 3 एवं 4 को संयोजित किया जाता है जब कि क्रमिक कक्षाओं का संयोजन ही लाभप्रद होगा।

2--कक्षा का वातावरण अनौपचारिक तथा क्रियात्मक होना चाहिये।

3--बैठने की व्यवस्था में सुधार किया जाय।

4--मानीटर का उपयोग आवश्यक है अतः मानीटर योग्य और ईमानदार होना चाहिए

5—बुद्धिस्तर की भिन्नता का ध्यान रखा जाय ।

6—कक्षाओं का कार्यक्रम सुविधानुकूल व्यावहारिक बनाया जाय ।

7—अनौपचारिक रूप से शिक्षा दी जानी चाहिये । शिक्षण के साथ-साथ खेलकूद तथा सांस्कृतिक शिक्षा दी जानी चाहिये ।

वृहत् कक्षा शिक्षण—

6-14 वर्ष के बालकों की अनिवार्य शिक्षा, छात्रवृत्ति, आन्दोलन तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण विद्यालयों में छात्रों की संख्या बढ़ गई । कारण यह था कि संसाधनों की कमी के कारण इससे अधिक विद्यालय स्थापित नहीं किये जा सकते थे। जन आकांक्षा को ध्यान में रखते हुए छात्रों को रोक भी नहीं सकते थे । अतः वृहत् कक्षा शिक्षण पद्धति अनिवार्य हो गई । इसमें अध्यापक को एक ही कक्षा में बहुत से बालकों को पढ़ाना पड़ता है ।

हानियां (समस्यायें)—वृहत् कक्षा शिक्षण में निम्न समस्यायें हैं :—

1—छात्रों पर व्यक्तिगत ध्यान न दे पाना ।

2—छात्रों की व्यक्तिगत कठिनाई व प्रगति की उपेक्षा ।

3—लिखित एवं मौखिक अभ्यास की कठिनाई ।

4—लिखित कार्य से संशोधनों में कठिनाई ।

5—सभी छात्रों की कार्य में व्यस्त रखने की कठिनाई ।

6—अनुशासन की समस्या ।

सुझाव—राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश द्वारा 1967 में इस समस्या का अध्ययन किया गया और निम्न सुझाव प्रस्तुत किये गये :

(क) कक्षा व्यवस्था—

1—कक्षा को खंडों में विभक्त करके पढ़ाया जाय ।

2—एक खंड में 30 से अधिक बालक न हों ।

3—खंडों का विभाजन बुद्धि स्तर के अनुसार किया जाय ।

4—खंडों की बैठने की समुचित व्यवस्था हो ।

5—बारी-बारी से खंडों में अध्यापन किया जाय ।

6—टोली नायक प्रत्येक खंड में नियुक्त किया जाय ।

(ख) शिक्षण कार्य—

1—पाठ्यक्रम को इकाइयों में बांट दिया जाय ।

2—अध्यापन विधि निश्चित हो ।

3—अध्यापकों को इस प्रणाली का प्रशिक्षण दिया जाय ।

4—शिक्षण-उपकरण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहे ।

विविध—

(i) प्रवेश सत्रारम्भ में या जनवरी में ही किया जाय ।

(ii) अध्यापकों का स्थानान्तरण जल्दी-जल्दी न किया जाय ।

(iii) अभिभावकों का सहयोग अपेक्षित है ।

(ग) निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण--

आधुनिक भारतीय शिक्षा के प्रारम्भिक चरण में ही निरीक्षण के माध्यम से प्राथमिक स्तर में सुधार लाने की बात स्वीकार की गई थी। किन्तु शैक्षिक पर्यवेक्षण की संकल्पना तथा इसके व्यावहारिक पक्ष में समय-समय पर अनेक मूलभूत परिवर्तन किये गये। पहले निरीक्षण कार्य का क्षेत्र बहुत सीमित था केवल विद्यालयों का वीक्षण करके उन्हें सहायता मात्र देना था। 1882 ई0 में भारतीय शिक्षा आयोग ने इस क्षेत्र में कुछ सुधार किया। उसके अनुसार निरीक्षकों द्वारा परीक्षाओं का संचालन होना चाहिये तथा सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों का भी निरीक्षण होना चाहिये। फलतः प्राथमिक शिक्षा का विकेन्द्रीकरण हो गया। इसकी व्यवस्था जिला बोर्डों एवं नगरपालिकाओं को दे दी गई। धीरे-धीरे निरीक्षक वर्ग का विस्तार हुआ।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् इसमें पर्याप्त सुधार किये गये। बोर्ड के अध्यक्षों की शक्तियों में वृद्धि की गई। जिला विद्यालय निरीक्षक, उपविद्यालय निरीक्षक, बालिका विद्यालय निरीक्षिका, सह उपविद्यालय निरीक्षक तथा सहायक बालिका विद्यालय निरीक्षिकायें नियुक्त की गई हैं। बाद में बेसिक शिक्षा अधिकारी तथा बेसिक शिक्षा अधिकारी (महिला), अतिरिक्त जिला विद्यालय निरीक्षक, उप बालिका विद्यालय निरीक्षिका की नियुक्ति की गई।

वर्तमान समय में निरीक्षण-कार्य को सुगम बनाया गया है। विभाग ने इसे बहुत व्यापक कर दिया है। माध्यमिक, प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा को अलग-अलग कर दिया गया है। अब निम्न ढंग से इस कार्य को व्यवस्थित किया गया है :--

प्रदेश स्तर--प्रदेश में शिक्षा निदेशक की नियुक्ति की गई है, उनकी सहायता हेतु संयुक्त शिक्षा निदेशक, अतिरिक्त शिक्षा निदेशक आदि भी नियुक्त हैं।

2--सम्भागीय स्तर--प्रदेश को कई (मंडलों) सम्भागों में विभाजित कर एक-एक सम्भाग अधिकारी अर्थात् उपशिक्षा निदेशक की नियुक्ति की गई है। साथ ही मंडलीय बालिका विद्यालय निरीक्षिका की भी नियुक्ति की गई है।

3--जनपद स्तर--जिले की सम्पूर्ण व्यवस्था हेतु जिला विद्यालय निरीक्षक का पद होता है। सहायतार्थ अतिरिक्त जि0 वि0 नि0 का पद भी होता है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, उपविद्यालय निरीक्षक, प्रतिउप विद्यालय निरीक्षक नियुक्त हैं। साथ ही जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी (महिला), उप विद्यालय निरीक्षिका (महिला), सहायक बालिका विद्यालय निरीक्षिका की भी नियुक्ति की गई है। अनौपचारिक शिक्षा हेतु कुछ जनपदों में एक और प्रौढ़ शिक्षा अधिकारी तथा परियोजना अधिकारी व सहपरियोजना अधिकारी की नियुक्ति की गई है। ब्लाक स्तर पर परिवेक्षकों की भी नियुक्ति की गई है।

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण में अन्तर

प्राचीन समय में निरीक्षण के अधिकार तथा रचनात्मक प्रतिभा को विकसित करने तथा शैक्षिक नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता नहीं थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद निरीक्षण में कुछ नये आयाम जोड़े गये। नवीन संकल्पना में निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण में पर्याप्त अन्तर किया गया है। अब निरीक्षण का दृष्टिकोण रचनात्मक होता है। प्राचीन दृष्टिकोण बदल गया है, पहले निरीक्षण कार्य निम्नलिखित था :

1--विद्यालयों का पंजीकरण।

2--विद्यालयों का वीक्षण एवं निरीक्षण।

3--परीक्षाओं का संचालन।

4--शिक्षकों के कार्य की जांच।

5--पुरस्कार एवं छात्रवृत्ति वितरण।

6--पुस्तक वितरण।

7--जिला विद्यालय समिति के सचिव के रूप में कार्य।

आधुनिक संकल्पना में निरीक्षक को पर्यवेक्षक की संज्ञा दी गई और यह अनुमान किया गया की एक पर्यवेक्षक में निम्न गुण होने चाहिये :--

1--समन्वयन--पर्यवेक्षक का कार्य निरीक्षण एवं अध्यापन के बीच की खाई को पाटना है, साथ ही अध्यापक, छात्र एवं समाज को परस्पर सम्बद्ध करना है ।

2--अभिप्रेरण एवं परामर्श--अध्यापकों को नवीन प्रयोगों तथा योजनाओं से अवगत करावें । उनके सुधार हेतु अभिप्रेरणा तथा परामर्श दें ।

3--कुशल अध्यापक--एक पर्यवेक्षक को कुशल अध्यापक भी होना चाहिये जिससे वह अध्यापकों के सम्मुख स्वयं आदर्श पाठ प्रस्तुत कर सके ।

4--मूल्यांकन--विद्यालय के क्रिया-कलापों के विविध पक्षों तथा सामूहिक प्रगति का सम्यक् मूल्यांकन कर पर्यवेक्षक आवश्यकतानुसार सुझाव देता है ।

5--विचार गोष्ठी का आयोजन--पर्यवेक्षक एक कुशल व्यवस्थापक होता है । उसे विचार गोष्ठियों का आयोजन एवं संचालन करे, जिसमें अध्यापकों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं का विवेचन किया जाय ।

6--प्रभावी निरीक्षण--पर्यवेक्षक को विद्यालय का प्रभावी निरीक्षण करना चाहिये । विद्यालय के सभी पक्षों का निरीक्षण कर उसकी आख्या उच्च अधिकारियों को अपने सुझाव सहित भेजे । अध्यापकों को सुधार हेतु सुझाव दें । एक विद्यालय में निरीक्षण में देखे कि उनकी पूर्ति कितनी हुई है ? विद्यालय में जाकर ही निरीक्षण किया जाय ।

निरीक्षक वर्ग द्वारा शैक्षिक नेतृत्व प्रदान करना--पर्यवेक्षकों का मुख्य कार्य विद्यालय समुदाय को नेतृत्व प्रदान करना है । इससे सम्बन्धित निम्नलिखित पक्ष हैं :

1--पहले करने की क्षमता का विकास करना ।

2--लक्ष्य निर्धारण में सहायता प्रदान करना ।

3--विद्यालय समुदाय के प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों को प्रकाश में लाना तथा उनका सदुपयोग करना ।

4--सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में शिक्षकों को सहायता देना ।

5--विद्यालय विकास की प्रक्रिया को स्थायी रूप देना ।

6--वृक्षारोपण, परिवार कल्याण, अल्पबचत आदि विकास धाराओं से शिक्षा को संबद्ध करना ।

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण का गुणात्मक सुधार--पर्यवेक्षण की आधुनिक संकल्पना में पर्यवेक्षक के दृष्टिकोण में परिवर्तन सर्वाधिक बल है । उसकी प्रभावकारिता को सुनिश्चित करने के लिये उसके कार्यों में कुछ कमी की जाय जिससे वह विद्यालयों के शैक्षिक सुधार हेतु यथेष्ट समय दे सके । इसके लिये यह आवश्यक है कि एक निरीक्षक के नियंत्रण में केवल उतने ही विद्यालय होने चाहियें, जिनकी आवश्यकताओं तथा समस्याओं के अध्ययन एवं उनकी पूर्ति तथा निराकरण हेतु पर्यवेक्षक अपेक्षित योगदान कर सके । अतएव, नवीन आयामों तथा बढ़े हुए दायित्वों के परिप्रेक्ष्य में तथा निरीक्षकों पर्यवेक्षकों के लिये सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय । इसमें उचित अन्तराल 5 वर्ष का होना चाहिए जिससे उन्हें शिक्षा जगत की नवीनतम अवधारणाओं तथा संकल्पनाओं से अवगत रखा जा सके ।

अध्यापक पर शिक्षण में अतिरिक्त अन्य प्रकार का कार्यभार--

वर्तमान समय में प्राथमिक स्तर के अध्यापक का कार्यभार बहुत बढ़ गया है । शिक्षण कार्य के अतिरिक्त अनेक ऐसे कार्यों का बोझ उसे ढोना पड़ रहा है जिसके कारण वह अपनी असली दायित्व ही वहन नहीं कर पाता है । शिक्षण कार्य के साथ-साथ उसे रजिस्टर बनाना, मासिक आख्यायें बनाना, अल्प बचत योजना चलाना, वृक्षारोपण, परिवार कल्याण आदि कार्य, जनगणना कार्य, निर्वाचन कार्य आदि में उन्हें लगा दिया जाता है, जिससे शिक्षण कार्य गौण हो जाता है और शिक्षा का स्तर गिर जाता है । वर्तमान अध्यापक अब केवल शिक्षक ही नहीं बल्कि समाज का बाध्य बन जाता है ।

अतः सुझाव यह है कि अध्यापकों को उक्त तमाम कार्यों से मुक्त रखा जाय जिससे वह अपने दायित्व का निर्वाह भली प्रकार कर सके तथा आने वाले समाज की संकल्पना को साकार कर सके ।

## 5--शिक्षक-प्रशिक्षण की समस्या

आज देश प्रगति के पथ पर निर्दिष्ट दिशा में अग्रसर हो रहा है। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन स्फूर्ति का संचार हो गया है। प्राथमिक स्तर के शिक्षण-प्रशिक्षण में भी नये जीवन का आना स्वाभाविक है।

5-1--अध्यापक प्रशिक्षण की पृष्ठ भूमि--आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये प्रशिक्षण की व्यवस्था सशक्त होगी और प्रशिक्षण का एक सुनियोजित कार्यक्रम होगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये विभाग द्वारा उठाये गये कदमों का उल्लेख करने के पूर्व प्रशिक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

सर्वप्रथम 1854 में वुड के शिक्षा घोषणा-पत्र में प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के प्रशिक्षण पर बल दिया गया। सर्वप्रथम प्रदेश के मेरठ, आगरा तथा वाराणसी नगरों में एक-एक नार्मल स्कूल स्थापित किये गये। 1862 में चौथा नार्मल स्कूल अल्मोड़ा में खोला गया। 1882 में हण्टर कमीशन ने भी शिक्षण-प्रशिक्षण पर प्रकाश डाला।

बीसवीं सदी में प्राथमिक शिक्षण-प्रशिक्षण निवर्गीकरण के अनुरूप थी। वे विद्यालय निम्न तीन स्तरों में श्रृंखलाबद्ध थे:

1--लोअर प्राइमरी
2--अपर प्राइमरी
3--मिडिल स्कूल

तदनुसार शिक्षक-प्रशिक्षण दो स्तरों में क्रमायोजित था--(1) पी० टी० सी० (प्राइमरी टीचर्स सर्टीफिकेट प्रशिक्षण) (2) बी० टी० सी० (वर्नाक्यूलर टीचर्स सर्टीफिकेट प्रशिक्षण)।

1913 ई० में प्रदेश में 6 नार्मल स्कूल तथा 109 ट्रेनिंग क्लास थे। 1922 में कानपुर में नर्वल में एक ट्रेनिंग स्कूल खोला गया तथा 6 नार्मल स्कूल और खोले गये। 1939 में आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी ने अपने सुझाव दिये:

1--नार्मल स्कूलों के पाठ्यक्रम में सुधार किया जाय।

2--प्रशिक्षण संस्थायें केवल दो प्रकार की होनी चाहिए।

(1) माध्यमिक विद्यालय के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए।
(2) अन्य बेसिक विद्यालयों के अध्यापक प्रशिक्षण के लिए।
(3) प्रशिक्षण कार्यक्रम 4 वर्ष का होना चाहिए।
(4) पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण भी चलाया जाय।

1939 में प्रदेश में बेसिक शिक्षा की प्रगति के लिये 9 बेसिक रिफ्रेशर सेन्टर चलाये गये। 1948 में समस्त नार्मल स्कूल बेसिक नार्मल स्कूलों में बदल दिये गये।

स्वतन्त्रता के बाद पी० टी० सी० समाप्त कर दिया गया। बी० टी० सी० को एच० टी० सी० (हिन्दुस्तानी टीचर्स सर्टीफिकेट) कर दिया गया। इसके साथ ही उच्चतर व्यवस्था हेतु जे० टी० सी० प्रशिक्षण प्रारम्भ किया गया।

1966 में कोठारी आयोग के सुझावों के आधार पर एच० टी० सी० तथा जे० टी० सी० प्रशिक्षण समाप्त कर बी० टी० सी० प्रशिक्षण चलाया गया। प्रशिक्षण अवधि 1 वर्ष कर दिया गया। 1976 में एक वर्षीय पाठ्यक्रम को दो वर्षीय कर दिया गया। वर्तमान समय में प्रशिक्षण की प्राथमिक स्तर हेतु निम्न व्यवस्था है:

### वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थिति तथा अध्यापक प्रशिक्षण का स्वरूप

1--पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण--स्वतन्त्रता के बाद प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि के साथ ही अधिकाधिक प्राथमिक अध्यापकों की आवश्यकता हुई। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रदेश में 152 नार्मल स्कूल थे। फिर भी अध्यापकों की कमी थी जिसकी पूर्ति हेतु राजकीय एवं सहायता प्राप्त संस्थाओं में यूनिट चलाये गये जिनमें 30-30 छात्राध्यापक प्रवेश लेते थ।

1970 में प्रदेश में प्रशिक्षण संस्थाओं तथा यूनिटों की संख्या निम्नवत् थी--

बी० टी० सी० स्तर के प्रशिक्षण विद्यालय--

| | पुरुष | महिला |
|---|---|---|
| शासकीय | 122 | 37 |
| अशासकीय | 67 | 13 |

बी० टी० सी० यूनिट की संख्या निम्नवत् है--

| | पुरुष | महिला |
|---|---|---|
| शासकीय | 2 | 18 |
| अशासकीय | .. | 1 |

बी० टी० सी० सेवारत प्रशिक्षण केन्द्र--

| | पुरुष | महिला |
|---|---|---|
| शासकीय | 10 | 2 |
| अशासकीय | .. | .. |

1969 में शासकीय बी० टी० सी० इकाइयां क्रमशः समाप्त कर दी गईं । 1976-77 से सेवारत भी समाप्त कर दिये गये । वर्तमान समय में सेवा कालीन प्रशिक्षण तीन प्रकार के हैं—(1) दीक्षा विद्यालय (सामान्य), (2) दीक्षा विद्यालय (विज्ञान), (3) दीक्षा विद्यालय (उर्दू) ।

2--पत्राधारित प्रशिक्षण प्रणाली—ऐसे सेवारत अध्यापकों के प्रशिक्षण की सुविधा के लिये जो कतिपय कारणों से शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश करने के पूर्व प्रशिक्षण नहीं प्राप्त कर सके थे, उन्हें शासन ने 1966 में पत्राधारित प्रशिक्षण देने का निर्णय लिया । राज्य शिक्षा संस्थान में पत्राधारित प्रशिक्षण अनुभाग खोला गया । प्रदेश में अप्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या 50,000 थी । इन्हें प्रशिक्षित करना भी आवश्यक था ।

प्रवेश की अर्हताएं—

(i) हाई स्कूल अथवा समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण ।

(ii) कम से कम 3 वर्ष का शिक्षण अनुभव ।

(iii) प्रवेश वर्ष में 1 जनवरी को आयु 30 तथा 40 वर्ष के बीच ।

समस्यायें—पत्राधारित प्रशिक्षण में अनेक समस्यायें हैं । पत्राधारित प्रशिक्षण हेतु उपयुक्त चयन नहीं हो पाता है । पाठन सामग्री का भी अभाव रहता है । अध्यापक कक्षा-शिक्षण का अभ्यास सही रूप से नहीं करते हैं । समय पर पाठों का अध्ययन करके उनके प्रश्नों के उत्तर नहीं भेज पाते हैं । आर्थिक परेशानी भी इस प्रशिक्षण को प्रभावित कर रही है ।

राज्य शिक्षा संस्थान ने इस ओर पर्याप्त कार्य किया है । अब प्रत्येक जनपद में स्वतः चुनकर नाम भेजे गये हैं । उनके पास सीधे पाठ भेजे जाते हैं । अध्यापकों को दीक्षा विद्यालयों में वर्ष में 4 शिविरों में कक्षा शिक्षण अभ्यास हेतु जाना पड़ता है । उन्हें निर्धारित पाठ पढ़ाने पड़ते हैं ।

(3) सेवारत पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण--शिक्षा की प्रगति को ध्यान में रखते हुये सेवारत पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। इसमें कार्यरत प्रशिक्षित अध्यापकों को शिक्षा के नवीन आयामों से अवगत कराने के लिए अल्पकालीन पुनर्बोध कराया जाता है।

इस प्रशिक्षण हेतु राज्य शिक्षा संस्थान, उ० प्र०, इलाहाबाद द्वारा एक नवीन पाठ्यक्रम की रचना की गई है। प्रत्येक केन्द्र में लगभग 100 अध्यापक 1 माह के लिए आते हैं और प्रशिक्षणोपरांत परीक्षा होती है। उसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

समस्यायें-- स प्रशिक्षण में अनेक समस्यायें हैं, जो निम्नवत् हैं--

1--दीक्षा विद्यालयों में स्थानाभाव।

2--निश्चित पाठ्यक्रम नहीं।

3--बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय से सूची समय से प्राप्त न होना।

4--अतिरिक्त धन की व्यवस्था नहीं।

5--आवासीय असुविधा।

6--अध्यापकों का संकुचित दृष्टिकोण।

सुधार के उपाय--उपरोक्त समस्याओं के निराकरण हेतु सरकार विभाग, तथा राज्य शिक्षा संस्थान प्रयत्नशील है। आर्थिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुये अन्य उपाय किये जा रहे हैं। संस्थान ने इस दिशा में अनेक सुधार कार्य किए हैं, जिनके आधार पर दीक्षा विद्यालयों में इस कार्य में सहयोग प्राप्त हो रहा है।

## विशिष्ट शिक्षा-संस्थानों की भूमिका, कार्य तथा उत्तरदायित्व

स्वतंत्रता के अभ्युदय के साथ-साथ वृहद स्तर पर शिक्षा के प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया गया फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मकता के विकास की कमी शिक्षाविदों एवं चिंतकों के लिए एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है। "गुणोत्कर्ष की अध्यापक शिक्षण कार्यक्रम का सर्वस्व है और यदि गुणात्मक वृद्धि न हुई तो अध्यापक शिक्षण न केवल वित्त का अपव्यय सिद्ध होगा अपितु उससे शैक्षणिक स्तरों में भी सब प्रकार से ह्रास होगा।"

### कोठारी आयोग

शिक्षा में प्रगति और विकास तथा गुणात्मक उन्नयन हेतु संस्थान की आवश्यकता होती है अतः संस्थानों की संस्थापना, उद्देश्यों, क्रिया कलापों, इनकी भावी योजना से शिक्षा जगत को परिचित करा दिया जाय क्योंकि इनके माध्यम से परम्परागत सीमाओं से शिक्षा को मुक्त करके उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। आज शिक्षा तकनीकी होती जा रही है। अतः शिक्षा के तकनीकी पक्ष को समृद्ध करने के लिए शिक्षा प्रसार विभाग प्रयत्नशील है। प्रत्येक प्रशिक्षण संस्थान में केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान प्रशिक्षण संस्थान, रचनात्मक प्रशिक्षण बेसिक प्रशिक्षण महाविद्यालय व्यायाम प्रशिक्षण महाविद्यालय आदि में शोध पर विशेष बल दिया जा रहा है। शिक्षा प्रक्रिया में दो मुख्य बिन्दु हैं :--

(1) शिक्षा क्या दी जाय ? (2) शिक्षा कैसे दी जाय ? इसके लिये शिक्षकों को विशिष्ट प्रशिक्षण प्रदान करना आवश्यक है। शिक्षा एवं शिक्षण सम्बन्धी इन आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के निराकरण हेतु कुछ विशिष्ट संस्थाओं की आवश्यकता है जो कार्यकर्ताओं को नवीन पद्धतियों के सम्बन्ध में अभिनवीकृत कर उनके प्रयोग में दक्ष बनाये। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रदेश में निम्नांकित संस्थान हैं जो शिक्षा के विभिन्न पक्षों की विभिन्न पद्धतियों एवं इकाइयों को एकत्र कर समवेत तथा पृथक्-पृथक् शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन में सक्रिय हैं--

(1) शिक्षा प्रसार विभाग--इस विभाग की स्थापना सन् 1938 में प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए की गई थी। वर्ष 1949-50 में साक्षरता अभियान के

साथ-साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमों एवं प्रकरणों पर गोष्ठी आदि के आयोजन का दायित्व भी इसे सौंपा गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन के लिए प्रादेशिक श्रव्य दृश्य शिक्षा प्रशिक्षण केन्द्र शिक्षा प्रसार विभाग के अन्तर्गत स्थापित किया गया। इसका कार्यक्रम श्रव्यदृश्य उपकरणों का निर्माण, परीक्षण, मूल्यांकन, वितरण, अध्यापकों का प्रशिक्षण, प्रकाशन एवं शोध आदि हैं। इसमें एक अन्य अनुभाग चल चित्र निर्माण केन्द्र एवं चल चित्रालय की स्थापना 1950 में केन्द्रीय सरकार की सहायता से हुई है। विभाग चार सचल दलों--सचल गोष्ठी दल, सचल साक्षरता दल, सचल प्रदर्शनी दल एवं सचल पुस्तकालय दल द्वारा समाज शिक्षा सम्बन्धी कार्यों का संचालन करता है। शिक्षा प्रसार विभाग नव साक्षरोपयोगी एवं प्रौढ़ साक्षरों की रुचि तथा आवश्यकतानुसार रोचक साहित्य का सृजन, प्रकाशन एवं वितरण करता है। नव-ज्योति नामक मासिक पत्रिका का नियमित प्रकाशन यहां से होता है। यहां वर्ष में 56-56 दिनों की तीन प्रशिक्षण सत्रों का आयोजन शिक्षक शिक्षिकाओं के लिए किया जाता है।

इस प्रकार समाज शिक्षा एवं विद्यालयी शिक्षा दोनों की दृष्टि से प्रसार विभाग की उपयोगिता, कार्यक्षेत्र एवं दायित्व महत्वपूर्ण है।

राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद--

इसकी स्थापना 1896 में हुई थी। इसे भारतीय विश्वविद्यालय आयोग 1902 की संस्तुति के आधार पर उच्च श्रेणी का प्रशिक्षण महाविद्यालय घोषित किया था। 1927 तक यह प्रयाग विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था और इसमें भारतीय शिक्षा सेवा श्रेणी के शिक्षक प्रशिक्षकों को नियुक्ति की जाती थी। इसे पुनः आचार्य नरेन्द्र देव समिति की संस्तुति के आधार पर 1948 में राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान में परिवर्तित कर दिया गया। इसका मुख्य उद्देश्य-स्नातकोत्तर प्रशिक्षण के स्तर का मानदन्ड ऊंचा करना सेवाकालीन शिक्षकों के लिए पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण की व्यवस्था, शिक्षा सम्बन्धी विशेष परियोजनाओं को कार्यान्वित कर उसके निष्कर्षों से शिक्षा जगत को परिचित कराना है। दूसरा-उद्देश्य पाठ्य चर्चा, शिक्षण विधि, मूल्यांकन आदि क्षेत्रों का अनुसंधान कार्य करना है। तीसरा मुख्य उद्देश्य शिक्षकों को व्यावसायिक नेतृत्व प्रदान करना और उच्चतम शैक्षिक मूल्यों के विकास और संरक्षण में उनकी सहायता करना है। इस संस्थान का मुख्य कार्य राजकीय शिक्षा विभाग के सामान्य एल0 टी0 डिप्लोमा के लिए प्रशिक्षण देना है तथा पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण के अतिरिक्त लोक सेवा आयोग की सीधी भर्ती से चुने हुए नव नियुक्त शिक्षा अधिकारियों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करना है। उपचारात्मक शिक्षण इकाई के माध्यम से पिछड़े हुये बालकों को मुख्य धारा से मिलाने के प्रशिक्षण की व्यवस्था यह संस्थान करता है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर निदानात्मक परीक्षण, पाठ्य पुस्तक निर्माण, सहायक सामग्री एवं शैक्षिक उपकरण निर्माण, उपचारात्मक शिक्षण, माइक्रोटीचिंग आदि पर शोध कार्य किया जाता है। उपर्युक्त उद्देश्यों एवं कार्यों की पूर्ति हेतु इस संस्थान में निम्नलिखित इकाइयां कार्यरत हैं--

1--प्रशिक्षण इकाई।

2--श्रव्य दृश्य इकाई।

3--पाठ्य चर्चा एवं अध्यापन विज्ञान-शोध इकाई।

4--उपचारात्मक शिक्षण इकाई।

5--शारीरिक शिक्षा इकाई।

6--जन संख्या--शिक्षण इकाई।

7--प्रायोगिक विद्यालय--

(1) राजकीय बेसिक डिमास्ट्रेशन स्कूल।

(2) राजकीय इण्टरमीडिएट कालेज, इलाहाबाद--

इस प्रकार नवीन शिक्षा नीति एवं शैक्षिक नियोजन, पाठ्य-पुस्तकों की रचना, शिक्षक संदर्शिका का निर्माण एवं विशेष प्रशिक्षण की दृष्टि से यह संस्थान विशेष महत्वपूर्ण है। प्रदेश की शीर्षक संस्था होने के कारण संस्थान अपने अनुभवी अधिकारियों और सुविधाओं से इस दिशा में पर्याप्त योगदान कर रहा है।

मनोविज्ञान शाला--इस की स्थापना जुलाई, 1948 में आचार्य नरेन्द्र देव समिति की संस्तुति के आधार पर राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय के एक अंग के रूप में की गई थी इसका उद्देश्य शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पक्ष को सबल एवं पुष्ट बनाने हेतु शोध एवं अनुसंधान कार्य करना तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर छात्रों को वैयक्तिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करना है। इसके कार्य को दो भागों में बांटा गया है--

(1) नियमित कार्य।

(2) विशेष कार्य।

(1) नियमित कार्य--इसमें छात्रों को शैक्षिक, वैयक्तिक, व्यावसायिक निर्देशन आते हैं। वैयक्तिक एवं व्यावसायिक निर्देशन की सुविधा के लिए वर्ष 1966 तक प्रदेश में मनोविज्ञान केन्द्रों एवं स्कूल मनोवैज्ञानिकों की सुविधा थी। बीच में यह सुविधा बंद होकर 1977 से इसे पुनः प्रारम्भ कर दिया गया। मनोवैज्ञानिक कार्यकर्ताओं के लिए डिप्लोमा इन गाइडेंस साइकोलोजी कोर्स की भी व्यवस्था है। यहां निम्नांकित शोध कार्य हो रहे हैं--

(1) बोल्ट और नट परीक्षण।

(2) बाल बौद्धिक विकास परीक्षण।

(3) एस0 वी0 1907 के विषय में संशोधन कार्य।

(4) कक्षा 8 के छात्रों के लिए निर्देशन बैटरी का संशोधन।

(5) प्रौढ़ बुद्धि परीक्षण भाग क एवं ख।

(2) विशेष कार्य--इसमें अतिरिक्त शिक्षा विभागीय एवं अन्य विभागों के मनोविज्ञान एवं निर्देशन सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं। सब-इंस्पेक्टर, पुलिस परीक्षा के प्रश्न-पत्र का निर्माण सैनिक स्कूल एवं स्पोर्ट्स कालेज में प्रवेश सम्बन्धी सहयोग देता है। इसके सुदृढ़ीकरण हेतु अनेक स्थानों जैसे लखनऊ, कानपुर, बरेली, मेरठ, वाराणसी, नैनीताल आदि में मनोवैज्ञानिक केन्द्रों की स्थापना की गई है। 'मनोविज्ञान शाला समाचार' का प्रकाशन मनोविज्ञान शाला करता है।

आंग्ल भाषा शिक्षण संस्थान, उ0 प्र0, इलाहाबाद--

इस संस्थान की स्थापना 1956 में ब्रिटिश काउन्सिल द्वारा नैफील्ड फाउण्डेशन की आर्थिक सहायता से की गई। सन् 1963 में इसे उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने अधीन ले लिया।

इसके उद्देश्य निम्नवत् हैं--

1--अध्यापकों को अंग्रेजी शिक्षण की अद्यतन विधियों तथा तकनीकों के सम्बन्ध में प्रशिक्षित करना।

2--अध्यापकों को अंग्रेजी बोलने पढ़ने तथा लिखने की क्षमता का विकास करना।

3--विभिन्न स्तरों के शिक्षक प्रशिक्षण के लिए अंग्रेजी पाठ्यक्रम की रचना, मूल्यांकन एवं आवश्यकतानुसार संशोधन करना।

4--विभिन्न स्तरों के लिए पाठ्य पुस्तकों, अध्यापक संदर्शिका और सहायक सामग्री का निर्माण करना ।

5--अंग्रेजी भाषा शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं पर शोध एवं उनका निदान करना ।

6--अंग्रेजी भाषा तथा उसके शिक्षण के सम्बन्ध में शिक्षा विभाग को परामर्श देना ।

संस्थान द्वारा वर्ष में दो (चार-चार मास के) 'डिप्लोमा इन टीचिंग इंगलिश' प्रशिक्षण चलाए जाते हैं । इसके अतिरिक्त 2 ग्रीष्म कालीन शिविर प्रधानाध्यापकों, प्रधानाचार्यों, प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रवक्ताओं, निरीक्षक वर्ग एवं भूतपूर्व प्रशिक्षणार्थियों के लिए आयोजित किए जाते हैं । यह संस्थान अंग्रेजी भाषा के प्रभावी शिक्षण एवं शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन हेतु शैक्षणिक सामग्री का निर्माण भी करता है । इसमें राष्ट्रीकृत पाठ्य पुस्तकों की रचना पाठ्यक्रम शिक्षक संदर्शिका एवं अन्य प्रकाशन भी शामिल हैं । अब तक संस्थान ने 13 पुस्तकें प्रकाशित की हैं ।

संस्थान द्वारा एक अर्द्धवार्षिक बुलेटिन का भी प्रकाशन किया जाता है । इससे भूतपूर्व प्रशिक्षार्थियों से सम्पर्क बना रहता है तथा शिक्षकों की कठिनाई का निराकरण भी किया जाता है । छोटे-छोटे अल्पकालीन शिविरों का आयोजन भी किया जाता है ।

### राज्य हिन्दी संस्थान, उ० प्र०, वाराणसी

इस संस्थान की स्थापना मार्च, 1969 में हुई । 20 दिसम्बर, 1971 तक यह राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद में था तत्पश्चात् इसे वाराणसी स्थानान्तरित कर दिया गया ।

इसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रभाषा हिन्दी के स्तरोन्नयन हेतु हिन्दी भाषा के विश्लेषण, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के क्रियात्मक व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन, पाठ्य पुस्तकों का निर्माण, हिन्दीतर प्रदेशों के शिक्षकों एवं शिक्षा अधिकारियों का प्रशिक्षण, कोष निर्माण तथा विषय एवं शिक्षक परक शोध एवं तत्सम्बन्धी प्रकाशन करना है-कार्य-समय-समय पर विभिन्न विद्यालय की शिक्षिकाओं एवं शिक्षकों के 21-21 दिवसीय दो प्रशिक्षण सत्र आयोजित किये जाते हैं । इसके अतिरिक्त समय-समय पर विभिन्न गोष्ठियों का आयोजन भी यहां किया जाता है । शोध एवं अध्ययन कार्य इस संस्थान के मुख्य कार्य हैं । भाषा सम्बन्धी पाठ्यक्रम का निर्माण, पाठ्य पुस्तकों का निर्माण, मूल्यांकन शिक्षक संदर्शिका की रचना आदि कार्य संस्थान में होता है । भाषा एवं शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु "वाणी" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन, प्राथमिक विद्यालय के लिये क्षेत्रीय भाषा की शब्द सूची पर्याय आदि का भी प्रकाशन संस्थान में किया जाता है । हिन्दी भाषा के आधुनिक उपकरण जैसे-टेपरिकार्डिंग, आकाशवाणी आदि की ओर संस्थान अग्रसर है ।

हिन्दी भाषी प्रदेश का हिन्दी संस्थान होने के कारण यह प्रभावी शिक्षण की ओर अग्रसर है ।

### राज्य शिक्षा संस्थान, उ० प्र०, इलाहाबाद

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार कार्यक्रम नियोजित एवं कार्यान्वित करने के उद्देश्य से कोठारी आयोग की संस्तुति के आधार पर फरवरी 1964 में राज्य शिक्षा संस्थान की स्थापना की गई । 1966 में पत्राचार प्रशिक्षण अनुभाग और 1975 में प्राविधिक इकाई अनुभाग तथा 80-81 में अनौपचारिक शिक्षा संस्थान में संलग्न किया गया है । इसके अतिरिक्त सांख्यिकी अनुभाग विस्तार सेवा अनुभाग भी स्थापित है जिनके कार्यक्रमों को सुचार रूप से चलाना संस्थान का मुख्य उद्देश्य है । यहां पर निम्नलिखित कार्य किये जाते हैं :

1--शोध कार्य--ग्रामीण विद्यालयों की समस्या आज की सर्व प्रमुख समस्या है। शिक्षक पाठ्य पुस्तक तथा मूल्यांकन इस समस्या के प्रमुख पक्ष हैं। शोध कार्य पाठ्यक्रम, कक्षा-शिक्षण, निरीक्षण, बालिका शिक्षा, बी० टी० सी० पाठ्यक्रम एवं सुधार से सम्बन्धित होता है। शोध निष्कर्षों को क्रियान्वित करने का कार्य भी संस्थान का है।

2--प्रशिक्षण कार्यक्रम--संस्थान में विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जैसे सेवाकालीन प्रशिक्षण पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण, गोष्ठी, शिक्षाधिकारी एवं शिक्षकों के लिए कार्यशाला का आयोजन इत्यादि। राज्य पुरस्कार प्राप्त आदर्श अध्यापकों के लिये शिविर का भी आयोजन संस्थान में किया जाता है। पत्राचार द्वारा बी० टी० सी० कराने का कार्य भी संस्थान का है। पुनर्बोधात्मक केन्द्रों को चलाने का निर्देशन, प्राविधिक सहायता आदि कार्य संस्थान का है।

3--प्रसार कार्य--शिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है एवं आवश्यक उपकरण एवं साहित्य भी प्रसार केन्द्रों द्वारा विद्यालयों को प्रदान किये जाते हैं। विद्यालयों में गुणात्मक सुधार तथा शैक्षिक उन्नयन हेतु संस्थान द्वारा अभिस्वीकृत विद्यालय योजना प्रारम्भ की गई है।

प्रकाशन--संस्थान में शिक्षा जगत के लिये अनेक उपयोगी साहित्य का प्रकाशन किया जाता है। "संस्थान समाचार" 'संस्थान विचार' एवं प्रतिभा की किरण यहां के नियमित प्रकाशन हैं। इसके अतिरिक्त यूनीसेफ परियोजनान्तर्गत निर्मित पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन भी संस्थान कर रहा है।

संस्थान द्वारा हाल अवरोध पर भी प्रदेश के तीन स्थानों--शंकरगढ़, जवां (अलीगढ़) तथा डलमऊ (रायबरेली) में शोध परियोजना चलाई गई हैं। बी० टी० सी० के द्विवर्षीय पाठ्यक्रम एवं कक्षा 1 से 8 तक के पाठ्यक्रम का निर्माण, संशोधन, संवर्धन एवं परिवर्धन, संदर्शिका तैयार करने, पाठ्य पुस्तकों को लिखाने और संशोधन कराने का कार्य भी संस्थान का है।

## राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान, उ० प्र०, इलाहाबाद

विज्ञान की शिक्षा के उन्नयन हेतु सन् 1965 में इसकी स्थापना की गई जिसका मुख्य कार्य प्राइमरी से लेकर इण्टरमीडिएट स्तर तक की विज्ञान शिक्षा का उन्नयन करना है। प्राइमरी एवं जूनियर हाई स्कूल स्तर तक प्रारम्भ की गई यूनिसेफ योजना सं० 1 का दायित्व भी संस्थान का है। यहां पर निम्नलिखित प्रयास किये जाते हैं--

1--पाठ्य पुस्तकों की रचना, प्रकाशन, समीक्षा एवं मूल्यांकन।

2--अध्यापक प्रशिक्षण एवं अध्यापक संदर्शिका की रचना।

3--विज्ञान किट का वितरण--

अब तक 3 से 8 तक की कक्षा की पुस्तकें लिखी गई हैं। संस्थान द्वारा प्रशिक्षण हेतु विभिन्न शिविर लगाये जाते हैं, यूनीसेफ की वाइंडर योजना के अन्तर्गत भी दो चरण में शिविर लगाये जाते हैं। यूनीसेफ द्वारा प्रदत्त किट बाक्स के वितरण का कार्य भी संस्थान का है। इसी प्रकार N. C. E. R. T. के सहयोग से भी विभिन्न कार्यशाला का आयोजन किया जाता है। अब तक 9,000 हाई स्कूल के विज्ञान अध्यापक, इण्टर के 4,000 शिक्षक प्रशिक्षित हो चुके हैं। 1,200 प्रश्नों का प्रश्न बैंक भी बनाया गया है। विज्ञान व तकनीकी की नवीन उपलब्धि से परिचित कराने हेतु N. C. E. R. T. एवं जवाहर बाल स्मारक निधि के सहयोग से वार्षिक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया जाता है। इस प्रदर्शनी के पूर्व जिला व मंडल स्तर पर विज्ञान प्रदर्शनी आयोजित की जाती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा प्रसार विभाग के सहयोग से फिल्म के निर्माण का कार्य भी किया जाता है।

## 6—शैक्षिक संकल्पनाएं तथा सुधार योजनायें—

6–1—प्राथमिक स्तरीय पाठ्यक्रम एवं पठन सामग्री की रचना—राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था से सम्बद्ध सभी उत्तरदायी व्यक्तियों के लिये सार्वजनीकरण एक चुनौती है। इसके समाधान के लिये अपेक्षित साधनों के साथ–साथ एक उपयोगी, सुगम एवं व्यवहृत पाठ्यक्रम की आवश्यकता है।

पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम पूर्व निर्धारित शैक्षिक लक्ष्य की पूर्ति हेतु निश्चित सामग्री का संग्रह होता है। उसके नियोजन द्वारा शिक्षा प्रदान करने की प्रक्रिया तथा शैली का निर्धारण किया जाता है।

स्वरूप—शिक्षा जगत की अनेक कठिन समस्याओं के समाधान हेतु शिक्षाविद, शिक्षा संस्थायें, प्रशासन एवं राष्ट्रीय शक्तियां कार्यरत हैं। अभिभावकों एवं शिक्षार्थियों की रुचियों, आकांक्षाओं एवं समस्याओं को दृष्टि में रखकर ऐसी पाठ्य सामग्री एवं शिक्षण विधि के विकास की आवश्यकता है जिसके द्वारा समय की बचत तथा सामाजिक समस्याओं का निराकरण हो सके। उक्त विचारों को ध्यान में रखते हुये शिक्षा को कोटि–कोटि शिक्षार्थियों तक पहुंचाने की दृष्टि से पाठ्यक्रम के नियोजन की आवश्यकता है। शिक्षा शास्त्रियों ने जो निष्कर्ष निकाला है उनके आधार पर उपयोगी पाठ्यक्रम के निम्न पांच कार्यों का समावेश आवश्यक है :—

1—शिक्षण एवं अधिगम के उद्देश्यों का निर्धारण और सम्बद्धता।

2—पाठ्य सामग्री का निर्माण उसके प्रकार आकार और विस्तार पर विचार।

3—शिक्षण विधियों का निर्धारण।

4—सम्पूर्ण पाठ्य सामग्री के उपयोग का सुनिश्चित एवं व्यावहारिक कार्य–क्रम प्रस्तुत करना।

5—स्थानीय समस्याओं, साधनों एवं लाभदायक कार्यों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम बनाना।

पाठ्यक्रम संचरना में जिन विभिन्न क्रियाओं से सुसम्बद्ध होना चाहिए उनमें से जो मुख्य हैं उन पर ध्यान देना आवश्यक है। इन क्रियाओं की सहायता से ही पाठ्यक्रम उपादेय एवं ग्राह्य बन सकता है :

1—वाचन—पाठ्यक्रम में वाचन को अधिक महत्व दिया जाय, पाठ्य पुस्तकों के अलावा अन्य पुस्तकें, समाचार–पत्र आदि पढ़ने के लिये प्रेरित किया जाय।

2—लेखन—पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों और अभ्यास कार्य के साथ–साथ पत्र–लेखन, समाचार लेखन, सूचनालेखन, डायरी, संवाद आदिलेखन का अभ्यास कराया जाय।

3—गोष्ठी एवं विचार विनिमय—पाठ्य–क्रम में गोष्ठी, विचार विनिमय वाद–विवाद, मुक्त विचाराभिव्यक्ति को भी रखा जाय।

4—निरीक्षण—पाठ्यक्रम में बालकों को प्राकृतिक, ऐतिहासिक भौगोलिक स्थलों के निरीक्षण की भी व्यवस्था की जाय।

5—अभिनय—कक्षाओं में पाठ्य पुस्तकों के छोटे–छोटे अभिनय कराये जायं।

6—उपयोगी उत्पादन कार्य—स्थानीय कौशल, उपलब्ध सामग्री और सामाजिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर उत्पादक कार्यों की शिक्षा की भी पाठ्यक्रम में व्यवस्था हो।

7—खेलकूद—पाठ्यक्रम में खेलकूद, स्काउटिंग, रेडक्रास आदि का भी समावेश आवश्यक है ।

8—नैतिक शिक्षा—वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये नैतिक शिक्षा का भी पाठ्यक्रम में समावेश होना आवश्यक है ।

वर्तमान प्राथमिक स्तर का पाठ्यक्रम—वर्तमान समय में जो प्राथमिक पाठ्यक्रम चल रहा है वह पर्याप्त व्यापक है । उसमें संशोधन भी होते रहते हैं । इसमें निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया गया है :

1—भाषा—पढ़ना, लिखना, बोलना ।

2—गणित—साधारण दैनिक उपयोग का ज्ञान ।

3—सामाजिक अध्ययन ।

4—विज्ञान ।

5—कृषि ।

6—शिल्प ।

7—शारीरिक व नैतिक शिक्षा ।

8—स्वास्थ्य शिक्षा ।

सुधार के प्रयास—वर्तमान पाठ्यक्रम को आधुनिकीकरण करने हेतु अनेक प्रयास किये जा रहे हैं । यह वैज्ञानिक युग है । पाठ्यक्रम में विज्ञान, उत्पादक कार्य आदि पर अधिक बल दिया जा रहा है । पाठ्यक्रम को व्यापक व उन्नत करने के लिये वर्तमान सरकार ने अनेक योजनायें शिक्षा विभाग के माध्यम से चलाया है । राज्य शिक्षा संस्थान, उ० प्र० इस क्षेत्र की एक व्यापक कार्यशाला है । यहां पर अनेक प्रकार की योजनायें व प्रयोग किये जा रहे हैं ।

1—पाठ्यक्रम गोष्ठी—संस्थान में पाठ्यक्रम सम्बन्धी अनेक गोष्ठियां आयोजित हुई हैं । इन गोष्ठियों में बेसिक शिक्षा अधिकारी, जि० वि० निरीक्षक, उप विद्यालय निरीक्षक, दीक्षा विद्यालय के प्रधानाचार्य तथा दीक्षा विद्यालय के अध्यापकों को बुलाया जाता है और उनके विचार विमर्श से प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम को समुन्नत करने का प्रयास किया जाता है ।

2—केप योजना—एव० सी० ई० आर० टी० नई दिल्ली की सहायता से यह योजना प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम पर भी विचार विमर्श करता है ।

3—यूनीसेफ से सहायता प्राप्त योजनाएं—शिक्षा संस्थान, उ० प्र०, इलाहाबाद में पाठ्यक्रम के सुधार हेतु अनेक योजनाएं चल रही हैं, जैसे योजना नं० 2, 3 और 5, इनमें पाठ्यक्रम में संशोधन व परिमार्जन किया जाता है । पाठ्य पुस्तकों का भी निर्माण किया जाता है ।

4—परिवेशीय अध्ययन—राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा प्राथमिक शिक्षा में परिवेशीय अध्ययन हेतु अनेक प्रयोग किये गये हैं ।

5—सर्वेक्षण—निकटवर्ती जनपदों में प्राथमिक स्तर के सर्वेक्षण किये गये तथा वहां पर जो स्थानीय समस्यायें हैं उनको पाठ्यक्रम में लाने का प्रयास किया जा रहा है ।

6—विज्ञान गोष्ठी—प्रदेश के विज्ञान अध्यापकों की गोष्ठी भी कई बार इस संस्थान में आयोजित हुई है जिनके द्वारा विज्ञान का पाठ्यक्रम निर्धारण का प्रयास प्रारम्भ है ।

पठन सामग्री की संरचना—प्राथमिक स्तर पर पठन सामग्री की संरचना सरकार द्वारा करायी जाती है । कक्षा 1 से 5 तक जो भी पाठ्य पुस्तकें चल रही हैं वह सभी राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित हैं । पठन सामग्री की संरचना में देश की आर्थिक, सामाजिक एवं भौगोलिक

परिस्थितियों का ध्यान रख कर किया जाता है। सम्पूर्ण पठन सामग्री का निर्माण राज्य के अधीन है। पठन सामग्री की संरचना में निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :--

1—पाठ्य-पुस्तकें बालकों की रुचि और क्षमता के आधार पर होनी चाहिए।

2—भाषा स्पष्ट सरल होनी चाहिए जो सरलता से ग्राह्य हो।

3—बालकों के मानसिक स्तर के अनुरूप ही पाठ्य पुस्तकें हों।

4—सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल पाठ्य सामग्री हो।

5—उत्पादक कार्य को प्रधानता देना चाहिए।

6—बालक को उबाने वाली पाठ्य सामग्री न हो।

7—छोटी कक्षाओं में चित्रों का भी समावेश हो।

8—अभिनय व कहानी आदि पाठ्य पुस्तकों में हो।

9—पाठ्य पुस्तकों में सरल से कठिन की ओर पाठ्य सामग्री व्यवस्थित हो।

10—पाठ्य पुस्तकों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिए।

उक्त बातों का ध्यान रखते हुये वर्तमान समय में जो भी पुस्तकें बन रही हैं उनमें राज्य शिक्षा संस्थान, उ० प्र०, इलाहाबाद का बड़ा योगदान है। संस्थान इस दिशा में भी सक्रिय है। अनेक पुस्तकों का प्रकाशन संस्थान द्वारा भी हुआ है।

न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम—

प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं के निशकरण के लिये अनेक योजनाएं चलाई गई हैं। इनको सुचारु रूप से चलाने के लिये तथा पाठ्यक्रम के प्रश्नों के समाधान के लिये 'न्यूनतम अधिगम क्रमोत्तर' की संकल्पना की गई है।

न्यूनतम अधिगम क्रमोत्तर—

इस पद में तीन शब्द हैं। न्यूनतम, अधिगम और क्रमोत्तर।

अधिगम—

अभी तक अधिगम केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने सूचनाओं एवं तथ्यों को संकलित करने तक ही सीमित था। अब अधिगम की संकल्पना में कुछ और आयाम जुड़ गये, जिसके द्वारा अधिगम के अर्थ में पर्याप्त प्रसार हो गया है। अधिगम का तात्पय विभिन्न अधिगर्ष अनुभवों के माध्यम से विकसित होने वाली दक्षताओं, कौशलों एवं अभिवृतिओं से लिया जाता है। उस सामग्री के शिक्षण से समीपस्थित व्यवहारगत पर विशेष आग्रह का है। पाठ्यक्रम विषयाधारित न होकर केन्द्रित रहेगा। दक्षता केन्द्रित पाठ्यक्रम इस लिये आवश्यक होगा कि शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों का अधिगम अनुभव भिन्न होगा।

दक्षता केन्द्रित पाठ्यक्रम होने पर पाठ्य-पुस्तक शिक्षण पद्धति आदि के निर्धारण एवं उनकी एक रूपता पर बल देने की आवश्यकता न होगी।

न्यूनतम—

उपलब्ध समय संसाधनों एवं आवश्यकता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक दक्षतायें जो प्रत्येक बच्चे में विकसित होनी चाहिये—को न्यूनयम की संज्ञा दी गयी। न्यूनतम के साथ यह भी ध्यान में रखना होगा कि सामान्य बच्चे उन दक्षताओं में पूर्णता प्राप्त कर सकें। न्यूनतम का निर्धारण करते समय केवल उन दक्षताओं को ही न्यूनतम माना जायेगा, जो सार्वभौमिक होगी।

क्रमोत्तर—

न्यूनतम दक्षताओं का निर्धारण पूरे प्राथमिक स्तर को एक इकाई मान कर किया जायेगा । इन दक्षताओं का क्रमिक विकास ही क्रमोत्तर है । प्रशासकीय सुविधा एवं प्रोन्नति हेतु इन्हें वय या स्तर के आधार पर क्रमायोजित किया जा सकता है । इस प्रकार न्यूनतम क्रमोगत अधिगम प्राथमिक शिक्षा स्तर के अन्त तक प्रत्येक बच्चे में पूर्णता के साथ विकसित हो जाने वाली कम से कम दक्षताओं की सोपान बद्ध व्यवस्था है दक्षताएं एवं उनके क्रमोत्तर विषय या विषय क्षेत्रों की रूढ़ संरचना, संस्कृति एवं पर्यावरण से मुक्त होंगी ।

न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम का शैक्षिक व्यवस्था में विशेष महत्व होगा इसलिए इसका निर्धारण सावधानी से करना होगा क्योंकि यदि न्यूनतम क्रमोत्तर के निर्धारण में तनिक भी शिथिलता बरती गई तो यही दोषारोपण किया जायेगा कि हमने इन बच्चों के लिए घटिया किस्म की शिक्षा की व्यवस्था की है ।

राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम का विकास परियोजना सं० 2, 3 के प्रति भागी 15 राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा किया गया । राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित प्रथम कार्यशाला में एन० सी० ई० आर० टी० के पाठ्यक्रम नवीनीकरण प्रकोष्ठ के सदस्यों के अतिरिक्त ससेक्स विश्वविद्यालय (यू० के०) के विशेषज्ञ श्री माइकेल इरोट भी सम्मिलित हुए । राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम का जो प्रारूप निर्धारित किया गया उस पर परीक्षण का दायित्व राज्यों को सौंपा गया है ।

राज्य स्तर पर सर्वप्रथम राष्ट्रीय स्तर पर विकसित इस प्रारूप का हिन्दी में अनुवाद किया गया । परियोजना 2 से सम्बन्ध तीनों दीक्षा विद्यालयों पर तीन दिवसीय कार्य शालाओं का आयोजन किया गया । इन तीनों कार्यशालाओं में अध्यापक/अध्यापिकाओं, शिक्षक प्रशिक्षिकों एवं निरीक्षकों को न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम से परिचित कराया गया । प्रतिभागियों की प्रति क्रियाओं के आधार पर प्रस्तावित प्रारूप में आवश्यक संशोधन किये गये । प्रत्येक अध्यापक/अध्यापिका ने वास्तविक कक्षा स्थिति में क्रमोत्तर एवं न्यूनतम का परीक्षण करने के लिये स्वेच्छया दक्षताओं का चयन किया ।

एक माह के प्रयोग एवं परीक्षण का मूल्यांकन एवं बच्चों की सम्प्राप्ति एवं क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर प्रस्तावित प्रारूप में आवश्यक संशोधन, परिवर्तन किये गये । तीनों जनपदों से प्राप्त पश्चपोषण के आधार पर राज्य स्तर पर आयोजित एक कार्यशाला में राज्य की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में राज्य के लिए न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम का एक प्रारूप स्वीकृत किया गया ।

राज्य स्तर पर विकसित इस प्रारूप पर पुनः राष्ट्रीय स्तर पर विचार किया गया । राष्ट्रीय स्तर पर अन्तिम रूप से संशोधित इस प्रारूप पर अब राज्यों द्वारा कार्य किया जाना प्रस्तावित है ।

न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम की संकल्पना का शैक्षिक व्यवस्था पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा । शिक्षा की प्रचलित संकल्पना में भी परिवर्तन होगा । विद्यालयी शिक्षा को ही शिक्षा मानने की विचार धारा में परिवर्तन होगा और शिक्षा केवल आकड़ों तथ्यों एवं सूचनाओं का संकलन मात्र न रह कर व्यवहारगत परिवर्तन, कौशल दक्षताओं एवं अभिवृत्तियों के विकास से अभिहित होगी । औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था का अन्तर समाप्त होगा—दोनों एक दूसरे की पूरक एवं सहगामिनी बनेंगी । जीवन की वास्तविक परिस्थितियों पर आधारित अधिगम अनुभवों को विश्वसनीयता हेतु आधार प्राप्त होगा एवं दक्षताओं के विकास हेतु अधिगम अनुभवों की व्यवस्था करने के लिये अन्तर्दृष्टि प्राप्त होगी ।

## 6.3 परिवेशीय अध्ययन

ग्राम जीवन का सर्वेक्षण ही ग्राम के शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक चित्रों का परिचायक । ग्राम के विकास के लिए शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक योजनाओं का निर्माण सर्वेक्षण आधार पर किया जाता है । पूर्ण एवं आदर्श विकास के लिए विद्यालयों एवं शिक्षकों का

कर्तव्य होता है कि प्रत्येक विद्यालय के अध्यापक अपने उस सम्बन्धित क्षेत्र के विषय में विशद ज्ञान रखें। इसके लिये आवश्यक है कि गांवों का व्यापक सर्वेक्षण किया जाय। सर्वेक्षण में गांव के साधन, यातायात के साधन आर्थिक स्थिति, कच्चामाल, सामाजिक व भौगोलिक स्थिति, जन-संख्या, शिक्षा का प्रतिशत, प्रमुख उद्योग तथा नागरिकों की रुचियों आदि के आंकड़े इसमें लिये जायं।

अध्यापक का कर्तव्य है कि वह अपने विद्यालय के छात्रों के अविभावकों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी रखे। उनसे सम्पर्क करे। इसके लिये उसे अतिरिक्त समय पर कार्य करना पड़ेगा। शैक्षिक सर्वेक्षण में गांव में शिक्षितों, अशिक्षितों की संख्या, बालक-बालिकाओं की संख्या और प्रतिशत आदि का ज्ञान हो जायगा जिससे शैक्षिक योजनाओं को लागू करने में सहायता प्राप्त होगी। शैक्षिक सर्वेक्षण के लिये अध्यापक को विशेष प्रकार के प्रपत्रों को तैयार करना पड़ेगा। इनके द्वारा उक्त आयामों के सम्बन्ध में जानकारी व सूचना एकत्र हो सकती है और सूचना से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर विश्लेषण किया जा सकता है।

ग्राम सर्वेक्षण प्रपत्र—

1—गांव का नाम।

2—गांव सभा का नाम।

3—न्याय पंचायत का नाम।

4—पत्रालय।

5—विकास क्षेत्र।

6—जनपद।

7—गांव की जन-संख्या का विवरण :—

| | कुल जन संख्या | पुरुष | महिला | बालक | बालिकायें |
|---|---|---|---|---|---|

8—5 से 15 वय वर्ग के बालक-बालिकाओं की संख्या।

9—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :—

ग्राम के नाम की उत्पत्ति।

ऐतिहासिक भवन।

पुरातत्व ज्ञान।

संस्कृति, भाषा।

10—भौगोलिक स्थिति—

गांव का क्षेत्रफल—सीमा।

कृषियोग्य भूमि।

सिंचाई के साधन।

घरों के प्रकार—कच्चे—पक्के।

11—उद्योग।

12—गांव की दूरी—(अ) ब्लाक से।

(ब) जनपद से।

13--निकटतम बाजार व स्टेशन ।

14--पेयजल योजना ।

15--आहार सम्बन्धी सूचनाएं ।

16--गांव में चल रही विकास व शैक्षिक योजनाएं ।

17--गांव की सामाजिक प्रथायें और कुप्रथाएं ।

शैक्षिक--

18--(अ) विद्यालय भवन--है/नहीं है ।

यदि नहीं तो कितनी दूर है

यदि है तो--

भवन की दशा

पक्का/कच्चा

कमरों की संख्या

बालकों की संख्या

टाट पट्टी

अध्यापकों के नाम

योग्यता

विद्यालय से उनके निवास की दूरी

खेल का मैदान

खेल के साधन

(आ) प्राथमिक स्तर के विद्यालय--

(i) बालकों के लिये

(ii) बालिकाओं के लिये

(iii) मिश्रित

(इ) जूनियर स्तर के विद्यालय--

(i) बालक

(ii) बालिका

(iii) मिश्रित

(उ) माध्यमिक स्तर विद्यालय--

(i) बालक

(ii) बालिका

(iii) मिश्रित

(19) गांव के शिक्षितों का विवरण--

(i) प्राथमिक स्तर तक

(ii) जूनियर स्तर तक

(iii) माध्यमिक स्तर तक

(iv) उच्च शिक्षा तक

(20) व्यावसायिक विवरण--

(i) कृषि

(ii) शैक्षिक

(iii) श्रमिक

(iv) तकनीकी

(v) अन्य

(21) परिवारों का विवरण--

संयुक्त परिवार

विघटित परिवार

(22) ग्राम स्तर पर चालू योजनायें--

(i) लघु कृषक विकास योजना

(ii) बाल विकास योजना

(iii) ग्रामीण विकास योजना

(iv) ऋण व अनुदान योजना

(v) हस्तकला प्रशिक्षण योजना

(vi) भूमि आबंटन

(vii) अंत्योदय

(viii) अन्न के बदले श्रम

(ix) अन्य

(23) गांव की प्रमुख समस्यायें--

(i) कृषि उत्पादन

(ii) आवागमन के साधन

(iii) शिक्षा सम्बन्धी

(iv) आर्थिक समस्या

(v) सुरक्षा की समस्या

(vi) राजनैतिक समस्या

(vii) अन्य

## 6.4 समाजोपयोगी कार्य

कोठारी आयोग की रिपोर्ट में लिखा गया है कि शिक्षा लोगों की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं के अनुरूप होनी चाहिये । वर्तमान समय में यही आवश्यकता भी है कि शिक्षा व्यावहारिक हो । शिक्षा में वे तथ्य हों जो जीवनोपयोगी हो । समाज के लिये उपयोगी हों । क्रियात्मक शिक्षा ही बालक को क्रियाशील बना सकती है जो समाज में जाकर श्रम से कतरायेगा नहीं । अतः शिक्षा में ऐसा पाठ्यक्रम अपनाया जाय जिसमें वे सभी विषय हों जो समाज में प्रचलित हैं--

(i) शिक्षा वैज्ञानिक हो ।

(ii) शिक्षा में शिल्प शिक्षा अभिन्न अंग के रूप में हो ।

(iii) शिक्षा का स्वरूप व्यावसायिक हो ।

(iv) कार्य केन्द्रित शिक्षा होनी चाहिए ।

आवश्यकता--समाजोपयोगी कार्य की शिक्षा में क्या आवश्यकता है ? यह एक विकट प्रश्न है । बालक का बहुमुखी विकास यदि करना है तो हमें उसे कुशल कारीगर बनाना होगा । परम्परागत शिक्षा में बालक केवल किताबी कीड़ा बन जाता है । अतः नवीन शिक्षा म बालक को जो भी पढ़ाया जाय वह क्रिया द्वारा ही पढ़ाया जाय । ध्यान यह रखा जाय कि सामाजिक वातावरण में उपलब्ध व्यवसाय की ही शिक्षा दी जाय । समाजोपयोगी शिक्षा ग्रहण करने पर बालक श्रम करेगा । समाज में जाकर वह बोझा नहीं बनेगा । अपने दैनिक कार्यों को स्वतः करेगा । अपनी जीविका अर्जन का मार्ग स्वतः खोजेगा और स्वावलम्बी बनेगा इससे वह समाज का एक आदर्श नागरिक बनेगा ।

बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ श्रम पूर्ण शिक्षा भी दी जाय जिससे उसका शारीरिक विकास हो । समाजोपयोगी शिक्षा की आवश्यकता इसलिये भी है कि हमारा देश अन्य देशोंकी अपेक्षा तकनीकी विकास में पिछड़ रहा है । अतः छोटी आयु से ही बच्चों में शिल्प के माध्यम से कर्तव्यशील एवं श्रमशील बनाना आवश्यक है ।

समाजोपयोगी शिक्षा से बालक का चरित्र निर्माण होता है तथा उसमें सहयोग की भावना बढ़ती है और वस्तुओं के रख-रखाव का ज्ञान होता है ।

समाजोपयोगी कार्य के अंतर्गत आने वाले प्रमुख कार्य--

(1) प्राथमिक स्तर पर उपलब्ध स्थानीय सामग्री के आधार पर विद्यालय में बच्चों की रुचि के अनुसार शिल्प शिक्षा दी जाय जसे--कताई, बुनाई, कागज का काम, चटाई बनाना, कृषि आदि ।

(2) जूनियर स्तर पर--(i) चमड़े का काम, (ii) ग्रंथ-शिल्प, (iii) सिलाई, (iv) कृषि, (v) टोकरी व चटाई बनाना ।

(3) माध्यमिक स्तर पर--(i) सिलाई, (ii) कताई-बुनाई, (iii) निवाड़ बनाना, (iv) बाध बनाना, (v) कृषि, (vi) चमड़े का काम, (vii) बढ़ई गीरी, (viii) लुहार गीरी ।

बालिकाओं को गृह विज्ञान, सिलाई, बुनाई कढ़ाई आदि की शिक्षा आवश्यक है ।

## जनसंख्या शिक्षा

### जनसंख्या शिक्षा--

क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत संसार का 2·4 प्रतिशत है परन्तु जनसंख्या की दृष्टि से इसका विश्व में दूसरा स्थान है । सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या का लगभग सातवां भाग

भारत में निवास करता है। अर्थात् संसार के प्रति सात मनुष्य में एक भारतीय है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या लगभग 69 करोड़ है। स्वतंत्रता के पूर्व देश की जनसंख्या लगभग 35 करोड़ थी तथा 35 वर्ष की अवधि में अब जनसंख्या लगभग दूनी हो गई है।

यदि जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण नहीं किया गया तो 19 वीं शताब्दी के अन्त तक भारत की जनसंख्या 100 करोड़ हो जायेगी। जनसंख्या के भयंकर विस्फोट का प्रभाव निःसंदेह ही देश की आर्थिक स्थिति पर पड़ेगा और भारतीयों के जीवन-स्तर का उन्नयन असम्भव हो जायेगा। गत 30 वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में हमने जो प्रगति की है वह जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण प्रभावहीन हो गई है।

भारत में पहली जनगणना सन् 1872 में हुई। फिर गणना 1891 में की गई। इसके बाद दस वर्ष के अन्तराल पर जनगणना का कार्य आरम्भ हुआ। वर्ष 1901 से दस वर्ष के अन्तराल पर जो जनगणना हुई उसका विवरण निम्न तालिका में दिया गया है जिससे जनसंख्या वृद्धि का एक चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है :

| वर्ष | जनसंख्या | दशकानुसार वृद्धि दर |
|---|---|---|
| 1901 | 238,337,313 | .. |
| 1911 | 252,005,470 | +5.73 |
| 1921 | 251,239,492 | − 0.30 |
| 1931 | 278,867,430 | +11.00 |
| 1941 | 318,537,060 | +14.23 |
| 1951 | 360,950,365 | +13.31 |
| 1961 | 439,072,582 | +21.64 |
| 1971 | 546,955,945 | +24.57 |
| 1981 | .. | .. |

जनसंख्या की यह तीव्रगति हमारे आर्थिक विकास में एक बड़ी बाधा है। देश की आर्थिक आय राष्ट्रीय उत्पादन पर निर्भर करती है। यदि विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय उत्पादन जनसंख्या की वृद्धि के अनुकूल नहीं हो पाता है तो लोगों का जीवन स्तर निम्न हो जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में भारत में साक्षर लोगों की संख्या दूनी से भी अधिक हो गई है। फिर भी देश की विशाल जनसंख्या निरक्षर है।

जनसंख्या वृद्धि के इन भयानक परिणामों को देखकर भारत सरकार ने विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा देने का सुझाव रखा है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त कार्य किया है। इस परिषद् ने सुझाव दिया है कि प्रत्येक विद्यालय में जनसंख्या शिक्षा एक विषय के रूप में न पढ़ाई जाय वरन् विभिन्न विषयों के साथ इसकी व्यवस्था की जाय। इस पर निम्न बातों का ध्यान दिया जाय :

(1) जनसंख्या शिक्षा क्या है ?

(2) इसकी शिक्षा विद्यालय में किस प्रकार दी जाय ?

(3) इसकी विषय वस्तु क्या हो ?

जनसंख्या शिक्षा का अर्थ—

जनसंख्या शिक्षा का अर्थ है व्यक्ति के जीवन स्तर को उन्नयन करना। जनसंख्या शिक्षा केवल यौन शिक्षा नहीं है और न इसका अर्थ केवल परिवार नियोजन है। वास्तव म जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जो हमें देश या प्रान्त की कुल जनसंख्या तथा इसकी विशेषताओं एवं प्रभाव की जानकारी प्रदान करे। जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत परिवार कल्याण एवं परिवार नियोजन की शिक्षा भी सम्मिलित है। यह निश्चित किया गया है कि जनसंख्या शिक्षा एक पृथक् विषय के रूप में न पढ़ाया जाय। भिन्न-भिन्न विषयों में जहां तक सम्भव हो इसका समावेश किया जाय। इस दृष्टि से सामाजिक अध्ययन एवं भाषा आदि विषय में जनसंख्या शिक्षा का पर्याप्त समावेश किया जा सकता है।

जनसंख्या शिक्षा के विषय या पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय राष्ट्र की वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा। जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्धित अनेक बातों से परिचय कराना आवश्यक है। विषयवस्तु में निम्न बिन्दुओं का समावेश पाठ्यवस्तु में आवश्यक है :

1—देश की जनसंख्या।

2—देश के साधन।

3—जनसंख्या एवं साधनों का सन्तुलन।

4—देश में कृषि योग्य प्रति परिवार भूमि।

5—देश में जन्म दर, मृत्यु दर एवं वृद्धि दर।

6—जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव।

7—प्रति एकड़ अन्न उत्पादन।

8—प्रति व्यक्ति आय।

9—देश में रोजगार की दशा।

10—जनता का जीवन-स्तर।

11—दस वर्ष बाद तथा 20 वर्ष बाद वर्तमान वृद्धि दर के अनुसार जनसंख्या का अनुमान।

12—शैक्षिक साधन एवं जन संख्या से तालमेल।

13—जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम के उपाय।

14—सीमित परिवार रखना।

15—सीमित परिवार के लाभ।

जनसंख्या शिक्षा किस प्रकार दी जाय—

वर्तमान युग में बच्चों को जनसंख्या शिक्षा तथा तत्सम्बन्धी समस्याओं और उनके निराकरण का ज्ञान देना आवश्यक है। विद्यालय इस कार्य का सर्वोत्तम स्थान है। कक्षा में अनेक प्रकार के बालक हैं। कुछ अस्वस्थ हैं तो कुछ को शैक्षिक सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं, कुछ बालकों को उचित भोजन या वस्त्र उपलब्ध नहीं है। शिक्षक इनसे सम्बन्धित बातों को जनसंख्या शिक्षा के परिपेक्ष्य में समझ सकता है। साथ ही देश एवं राज्य की जनसंख्या नीति क्या है तथा जनसंख्या का देश के विकास नीतिओं पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इन बातों को सुविधा पूर्वक समझा जा सकता है।

इस समय हमें भयंकर जनसंख्या विस्फोट का सामना करना पड़ रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् गत 30 वर्षों में हमने विभिन्न क्षेत्रों में अप्रत्याशित प्रगति की है परन्तु हमें यह प्रगति विशाल जनसंख्या के कारण दृष्टिगोचर नहीं हो पाती है और न इस प्रगति का पूर्ण लाभ ही मिल पाता है।

अतः हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि देश की जनसंख्या के सम्बन्ध में हम बालकों को शिक्षा प्रदान करें जिससे हम इस समस्या का निराकरण करने में समर्थ हो सकें।

6·6—अधिगम संस्थितियां. सीखने प्रभावित करने वाली स्थितियां (तत्व)

सीखने की प्रक्रिया किसी विशेष संस्थितियों से प्रभावित नहीं होती उसकी संचालन की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाली अनेक स्थितियां हैं।

सुविधा की दृष्टि से इन्हें हम तीन भागों में बांट सकते हैं :

(1) मनोवैज्ञानिक स्थितियां।

(2) शारीरिक स्थितियां।

(3) वातावरण सम्बन्धित स्थितियां।

1—मनोवैज्ञानिक स्थितियां दो प्रकार की होती हैं :

(i) ऐसी स्थितियां जो सीखने की गति-प्रगति अथवा बालक को प्रोत्साहन देती हैं।

(ii) ऐसी स्थितियां जो सीखने की गति को धीमा करती हैं अथवा बड़ी बाधा उत्पन्न करती हैं।

1—ऐसी स्थितियां जो सीखने की गति को प्रोत्साहित करती हैं वे निम्न हैं :

(1) अभिप्रेरणा।

(2) आवश्यकता।

(3) प्रोत्साहन।

(4) अन्तर्नोदि।

(5) उद्देश्य।

2—ऐसी स्थितियां जो सीखने की गति को धीमा करती हैं :

(1) चिन्ता।

(2) तनाव संघर्ष।

(3) संवेगात्मक स्थिति।

(4) थकान, मानसिक थकान और शारीरिक थकान।

शारीरिक स्थितियां :—

1—शारीरिक तथा मानसिक व्यवस्था।

2—बीमारियां।

3—परिपक्वता।

4—बुद्धि।

वातावरण से सम्बन्धित स्थितियां--

(i) उचित व्यवस्था ।

(ii) अधिगम विधियां ।

(iii) परिवार की आर्थिक स्थिति ।

(iv) आवास का विभाजन ।

(v) अध्यापक की भूमिका ।

(vi) इच्छा शक्ति ।

(vii) उन्नति का ज्ञान ।

(viii) पुरस्कार और निन्दा ।

(ix) पूर्व अनुभव ।

एलेकजेन्डर के द्वारा कुछ स्थितियां निम्न हैं--

(1) गति कौशल का अर्जन तथा प्रति क्रिया की आदत ।

(2) प्रत्यक्ष ज्ञान तथा निरीक्षण में विकास ।

(3) स्मरण के प्रतीक चलचित्र तथा साहचर्य विचारों को विकसित करने वाले विचार ।

(4) संवेगात्मक गतिक्रियाओं एवं प्रेरणात्मक प्रवृत्तियों में संशोधन ।

(5) ध्यान, सूझ और समस्या समाधान की योग्यता ।

(6) व्यक्ति लक्षण विचार मनोदशा का विकास ।

अधिगम सिद्धान्त--

मनोवैज्ञानिक अधिगम के सिद्धान्तों में एक मत नहीं है । इसलिये उनके मतों के आधार पर उनके विचार को दो मुख्य क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है :

1--अधिगम के साहचर्य सिद्धान्त ।

2--अधिगम के क्षेत्र सिद्धान्त ।

अधिगम के साहचर्य सिद्धान्त--साहचर्य से तात्पर्य उन सिद्धान्तों से है जो मानव व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं । इसके अन्तर्गत हम निम्न उप सिद्धान्तों को ले सकते हैं :--

(क) अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त ।

(ख) उद्दीपक अनुक्रिया सिद्धान्त ।

(ग) पुनर्बलन का सिद्धान्त ।

अधिगम के क्षेत्र सिद्धान्त--

(क) पूर्णाकारवाद ।

(ख) अधिगम का तत्वरूप सिद्धान्त ।

(ग) अधिगम का चिन्ह पूर्णाकार सिद्धान्त ।

अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त--इसका अर्थ अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक क्रिया का उत्पन्न होना है। जैसे एक बालक स्कूल जा रहा है, रास्ते में हलवाई की दूकान पड़ती है मिठाई देखकर बालक के मन में लालच आ जाता है। धीरे-धीरे यह क्रिया स्वाभाविक हो जाती है।

अनुकूलित अनुक्रिया को नियंत्रित करने वाले तत्व--

1--अनुक्रिया का प्रभुत्व।

2--दो उद्दीपकों में समय का सम्बन्ध।

3--प्रेरणा की पुनरावृत्ति।

4--भावात्मक पुनर्बलन।

अनुकूलित अनुक्रिया के प्रभावक प्रतिधारक--

(1) अभ्यास।

(2) समय।

(3) बाहरी बाधायें।

(4) प्रेरक।

(5) बुद्धि।

(6) आयु।

(7) मानसिक स्वास्थ्य।

अनुकूलित अनुक्रिया और शिक्षा--इस सम्बन्ध में वाटसन महोदय ने कहा था। "मुझे कोई भी बालक दे दो मैं उसे जो चाहूं बना सकता हूं।" इसके प्रयोग से विद्यालय में निम्न लाभ हो सकते हैं :--

(i) बालकों में अच्छे स्वभाव का निर्माण।

(ii) अभिवृत्तियों का विकास।

(iii) अक्षर विन्यास तथा गुण शिक्षण।

(iv) मानसिक एवं संवेगात्मक अस्थिरता का उपचार।

(v) अध्यापक का सहयोग।

उद्दीपक अनुक्रिया सिद्धान्त--इसे संयोजनवाद भी कहते हैं। इसके प्रतिपादक थार्नडाइक हैं। उद्दीपन अनुक्रिया के सिद्धान्तों एवं तत्वों का आधार तंत्रिकातंत्र है। इसमें उद्दीपकों एवं अनुक्रियाओं में संयोजन होता है। यह संयोग संकेतों से स्पष्ट किये जाते हैं। सीखना, सम्बन्धों को स्थापित करता है और सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य मात्र मस्तिष्क करता है। इस नियम के दो मुख्य नियम हैं।

मुख्य नियम--

(i) तत्परता का नियम।

(ii) प्रभाव का नियम।

(iii) अभ्यास का नियम।

गौण नियम—

(i) मानसिक स्थिति ।
(ii) बहुविधि अनुक्रिया ।
(iii) आंशिक क्रिया ।
(iv) आत्मीकरण ।
(v) साहचर्य परिवर्तन ।

पुनर्बलन सिद्धान्त—यह क्लार्क हल द्वारा प्रतिपादित है । यह जीवन के पूर्ण कार्य को प्रतिपादित करता है । इसमें जब व्यक्ति प्रमोदन का अनुभव करता है तब अनेक प्रकार की उत्तेजनायें उत्पन्न होती हैं और ये उत्तेजनायें व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुंचाने में सहायक होती हैं ।

## अधिगम के क्षेत्र का सिद्धान्त

पूर्णकारवाद—इसके अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु को आंशिक रूप से नहीं अपितु पूर्ण रूप से सीखता है । इसके प्रतिपादक वरदीकर थे ।

नियम—

(1) संरचनात्मकता ।
(2) समीपता ।
(3) समरूपता ।
(4) समापन ।
(5) निरन्तरता ।

इस सिद्धान्त को कोलहर में आगे बढ़ाया । उन्होंने इसका प्रयोग एक चिम्पंजी पर किया । छत पर केला लटकाये पिंजड़े में दो छड़ी रखा । उसे उसमें बंद कर दिया । बंदर ने प्रयास किया । छड़ी जोड़ लिया और केले गिरा कर खा लिया । इसी आधार पर आलपोर्ट ने यह सिद्ध किया कि बंदर की अपेक्षा मानव पर यह अधिक उपयोगी हो सकता है ।

अधिगम का तत्व रूप सिद्धान्त—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कुर्ट ले विन ने किया । उनके अनुसार "व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिये, व्यक्ति की स्थिति को उद्देश्यों से सम्बन्धित मानचित्र में निर्धारित करने एवं प्रयत्नों की जानकारी आवश्यक है" । इस सिद्धान्त में मानव व्यवहार के निम्न आयाम बताये गये हैं :—

1—जीवन विस्तार—उस वातावरण जिसमें व्यक्ति रहता है और प्रभावित रहता है । जीवन के मानचित्र में व्यक्ति एक दूसरे स्थान पर विचरण करता है । बालक अनेक वातावरण की समस्याओं और बाधाओं को पार करता हुआ उद्देश्य की प्राप्ति करता है ।

2—शक्ति—मानव सदैव उद्देश्यों से शक्ति प्राप्त करता है । उद्देश्य धनात्मक और ऋणात्मक दोनों प्रकार के होते हैं । धनात्मक उद्देश्यों से प्रेरित होकर व्यक्ति आगे बढ़ता है और ऋणात्मक उद्देश्यों से व्यक्ति के कार्य में बाधायें आती हैं जो आगे बढ़ने से रोकती हैं ।

3—अवरोध—व्यक्ति अपने उद्देश्य तक पहुंचने में अनेक बाधाओं एवं रुकावटों से होकर गुजरता है । यह अवरोध कहलाती हैं । लिविन ने अधिगम को वातावरण का संगठन माना है वह अधिगम को समस्या नहीं मानता है । उसने पुरस्कार एवं दण्ड को अधिक महत्व दिया है ।

अधिगम का चिन्ह पूर्णकार सिद्धान्त--इसका प्रतिपादन टालमन ने किया है। इसको आधार पूर्णकारवाद है। उनकी मान्यता है कि "मानव का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है। उसके अनुसार उद्दीपन में अर्थ उसी समय उत्पन्न होता है जब कि वह व्यक्ति की आवश्यकता और उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होते हैं।

शिक्षा प्रौद्योगिकी और उसका उपयोग--

इस बदलते हुये मशीन युग में प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह व्यवसाय हो, औषधि, खेल या शिक्षा हो, निपुण होने के लिए वैज्ञानिक विधि का ज्ञान आवश्यक है। उसे प्रौद्योगिकी या प्रविधि की संज्ञा दी जा सकती है। शिक्षा से सम्बन्धित होने पर यह शिक्षा प्रौद्योगिकी कहलायेगी।

यह देखने में आया है कि मशीनों के प्रयोग से कार्य सुगमता से हो सकता खर्च कम लगता है, उत्पत्ति में समानता रहती है तथा समय की बचत होती है। यही कारण है कि व्यक्ति प्रौद्योगिकी पक्ष समर्थ करते हुये परिवर्तन पसन्द करता है। चूंकि हमारे देश की शिक्षा अब उस युग से गुजर रही है जब कि हमारी सभ्यता इस प्रौद्योगिकी के प्रभाव से बच नहीं सकती अतः हमारी शिक्षा व्यवस्था भी मशीनों से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकती। कारण यह है कि मशीनें या यंत्र शिक्षा में भी वही सुविधायें प्रदान कर सकती हैं जो कि उद्योग, व्यवसाय तथा घरेलू कार्यों में उपलब्ध हैं। ये सुविधायें निम्नलिखित हैं :--

(1) श्रम की बचत।
(2) अधिक उत्पादन।
(3) कार्यक्षमता में वृद्धि।
(4) गुणात्मक सुधार।

शिक्षा एक कला है। शिक्षा को प्रभावकारी एवं उपयोगी बनाने के लिये उसे प्राविधिक स्वरूप देना आवश्यक है अर्थात् वैज्ञानिक विधि के अनुसार पढ़ने की परम्परागत विधियों को बदलना होगा।

अब केवल भाषण विधि से पढ़ाना दोषपूर्ण समझा जाने लगा है। ऊंची कक्षाओं की बात और है परन्तु प्राविधिक शिक्षा में सामान्यतः प्रत्येक वर्ग में पढ़ाते समय मशीनों का प्रयोग अनिवार्य है। या तो ये मशीनें श्रव्य दृश्य उपकरणों के रूप में सहायक सामग्री की भांति या स्वशिक्षण यन्त्रों के रूप म प्रयोग हो सकती हैं। इस प्रकार हमारी पुरानी शिक्षण विधि का नवीनीकरण हो सकता है। हम मनोविज्ञान एवं ज्ञानार्जन के नवीन साधनों एवं यन्त्रों को सम्मिलित रूप में प्रयोग कर शिक्षण विधियों को अधिकाधिक समाजोपयोगी बना सकते हैं।

श्रव्य दृश्य उपकरण सहायक सामग्री के रूप में महत्व--

1--बुद्धि एवं वय के अनुसार यदि इनका प्रयोग किया जाये तो इनसे शिक्षण में स्थिरता आ जाती है।

2--इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान स्मृति में स्थायी रहता है अर्थात् व्यक्ति इसे जल्दी नहीं भूलता।

3--व्यक्ति या शिक्षक को अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बहुत कुछ ज्ञान वह देख कर ही प्राप्त कर लेता है।

4--हाथ से स्वयं निर्मित उपकरणों से बालक में कार्य शीलता उत्पन्न हो जाती है और वह कार्य में संतुष्टि का अनुभव करता है।

5--श्रव्य दृश्य उपकरणों द्वारा व्यक्ति में अन्वेषण एवं आविष्कार की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।

नीचे संक्षेप में कुछ परम्परागत श्रव्य दृश्य उपकरणों का उल्लेख किया गया है। शिक्षा प्रौद्योगिकी के मुख्य तत्व तो यही हैं। इन उपकरणों से बच्चों की रुचि के अनुसार, उनकी वय एवं बुद्धि के आधार पर चुन कर प्रयोग कर शिक्षण प्रभावशाली बना सकते हैं। प्रचलित श्रव्य दृश्य उपकरण निम्नवत् हैं :--

1--श्याम पट्ट--इसे चाक बोर्ड भी कह सकते हैं। शीघ्रातिशीघ्र एवं सरलता से इस पर लिखने के अतिरिक्त रेखाचित्र आदि सफेद या रंगीन खड़िया की बत्तियों से बनाये जा सकते हैं। सभी विषयों को पढ़ाने में यह शिक्षक का अभिन्न मित्र है।

2--बुलेटिन बोर्ड--यह श्याम पट्ट के समान ही होते हैं। केवल ऊपरी सतह पर कोई मुलायम वस्तु जैसे कार्क, लिनोलियम आदि मढ़ या जड़ दिया जाता है। जिससे चित्र आदि पिनों द्वारा उचित स्थान पर व्यवस्थानुसार लगा दिये जाते हैं। छात्र इन्हें सुविधानुसार देख कर इनके द्वारा ज्ञानार्जन कर सकते हैं।

3--पलेनलोग्राफ--इसका प्रयोग शिक्षा एवं व्यवसाय दोनों में होता है। यह सरल समतल एवं प्रभावकारी साधन है इसमें चित्रों के पीछे रेगमाल कागज के टुकड़े या पलेनल ही चिपका रहने के कारण चित्र को लगाने में क्रिया व गति लाई जा सकती है। कार्य समाप्त होने पर इन चित्रों को समेट कर अन्य अवसरों पर प्रदर्शनार्थ रख लेते हैं। भाषा शिक्षण में वर्तनी, वाक्य बनाना, कहानी आदि सिखाने में तो यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों के पढ़ाने में भी इसे प्रयोग में ला सकते हैं। पलेनल के स्थान पर खद्दर या टाट प्रयोग करने पर इसे खद्दारो ग्राफ या टाटोंग्राफ की भी संज्ञा दी गई है।

4--चित्र--यह मूक स्थिर साधन है। इसे बड़े या छोटे आकार में बना कर या पूर्व पत्रिकाओं से काट कर या बाजार से प्राप्त कर सकते हैं। इनके द्वारा अप्रस्तुत वस्तु का ज्ञान सरलता से दिया जा सकता है। इन्हें वैज्ञानिक ढंग से स्टियोग्राफ द्वारा दिखा कर ठोसपन का आभास प्रस्तुत किया जा सकता है।

5--चार्ट तथा ग्राफ--चित्र के ही समान परन्तु आकार में बड़े होते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं जैसे पलोट चार्ट, टेबुल चार्ट, पाई चार्ट, ट्री चार्ट आदि। तुलनात्मक अध्ययन हेतु यह विशेष रूप से लाभदायक हैं।

6--पलैश कार्ड--यदि चित्रों को चार्ट ही के समान परन्तु मोटा कागज लगा कर मेज पर रख कर जितनी बार चाहें उठा कर दिखाने योग्य बना लिया जाय तो यही पलैश कार्ड कहलायेंगे हैं।

7--ग्लोब तथा मानचित्र--ग्लोब भी सरलता से कागज एवं बांस की खपच्ची या मिट्टी के घड़े आदि से बनाये जा सकते हैं। मानचित्रों को कागज पर या धरती पर मिट्टी, कंकड़, पत्थर आदि द्वारा उभारदार बना कर भूगोल एवं इतिहास शिक्षण के शक्तिशाली साधनों के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

8--प्रति रूप--यह वास्तविक वस्तुओं के उनसे मिलते-जुलते यथार्थ रूप होते हैं जो छोटी वस्तु को बड़े तथा बड़ी वस्तु को छोटे बनाकर सुविधानुसार स्कूल कक्ष में ही लाकर दिखाये जा सकते हैं। इन्हें मिट्टी, गत्ते, लकड़ी तथा प्लास्टीसीन पेपर आदि विभिन्न पदार्थों से बनाया जा सकता है।

9--चलचित्र प्रोजेक्ट--वैज्ञानिक आविष्कारों में इनका शिक्षा में विशेष स्थान है। इनके द्वारा 35, 16, 8 मिली मीटरों की फिल्मों का प्रक्षेपण कर भिन्न-भिन्न देशों के रीति रिवाज, उपन्यासों की घटनाएं, विज्ञान के परीक्षण सभी कुछ सादी एवं रंगीन फिल्मों द्वारा चलते-फिरते रूप में दिखा कर सजीव वर्णन संभव है। इतिहास, समाजिक विषय, विज्ञान सभी कुछ इस उपकरण द्वारा फिल्म को धीमी गति से, एनीमोशन तथा माइक्रो फोटोग्राफी द्वारा बहुत प्रभावशाली ढंग से पढ़ा सकते हैं।

10--स्लाइड, फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर तथा एपीडाइसकोप--चलचित्रों के अतिरिक्त साधारण प्रोजेक्टरों द्वारा स्लाइड तथा फिल्म पट्टी के प्रेक्षण द्वारा अनेको विषय सुगमता से पढ़ाये जा सकते हैं। यह उपकरण या यंत्र सरलता से बन सकते हैं। तथा सस्ते दामों में खरीदे भी जा सकते हैं। कक्षा में अपारदर्शक चित्र जैसे पुस्तक पत्रिकाओं आदि से या छोटी समतल वस्तुयें जैसे सिक्के, फूल पत्ती, बीज आदि एपीडाइस्कोप की सहायता से दिखाये जा सकते हैं।

11-ओवरहेड प्रोजेक्टर--यह भी इन्हीं उपर्युक्त प्रोजेक्टरों के समान ही एक और अद्भुत यंत्र है। कक्षा में तत्क्षण चित्रों, आलेखनों तथा लिखित सामग्री को ट्रान्सपेरेन्सीज पर तुरन्त अंकित कर प्रदर्शन करते जाने की सुविधा इस प्रक्षेपण यंत्र का विशेष गुण है। यह ब्लैकबोर्ड के समान अध्यापक के पीछे तथा छात्रों के सम्मुख परदे (स्क्रीन) पर प्रक्षेपण करने के कारण कक्षा व्यवस्था में विघ्न नहीं उत्पन्न होने देता।

12--दूरदर्शन यन्त्र (Television)--इस यन्त्र द्वारा यह संभव हो गया है कि लाखों-करोड़ों मील दूर पर घटने वाली घटनायें तत्क्षण दिखाई जा सकती हैं। विज्ञान के परीक्षण, मशीनों को चलाने की विधियां, शल्य क्रिया सम्बन्धी प्रयोग सभी कुछ अति विधिपूर्वक सूक्ष्म रूप से इसके द्वारा देखना सम्भव है। काइनसकोप तथा वी० डी० ओ० टेप द्वारा पूर्व घटित घटनायें एवं आयोजित प्रोग्राम भी इसके द्वारा सुविधा-पूर्वक देखना सम्भव है। मनोरंजन, ज्ञानार्जन तथा प्रचार का यह एक उत्तम साधन है। इसमें श्रव्य दृश्य सम्बन्धी दोनों ज्ञानेन्द्रियों का एक साथ प्रयोग होता है।

13—रेडियो--यह केवल श्रवण यन्त्र है। आधुनिक काल की इस वैज्ञानिक देन का शिक्षण में बड़ा महत्व है। इसके द्वारा अनेक शैक्षिक प्रोग्राम घरों तथा स्कूलों में शिक्षण देने हेतु प्रसारित होते रहते हैं। ट्रांजिस्टर के रूप में अब इनका निर्माण अति सुविधजनक हो गया है। इनके द्वारा स्वशिक्षण भी सम्भव है।

14—टेपरिकार्डर--यह यन्त्र रेडियो के ही समान श्रव्य-दृश्य यंत्र है। इसमें सुविधा यह है कि इच्छानुसार इस पर कोई भी श्रव्य कार्यक्रम अंकित कर पुनः जितनी बार चाहें सुन सकते हैं। गाने, भाषण, ड्रामा आदि के संवाद, पशु-पक्षियों की बोलियां आदि इसके द्वारा टेप कर आवश्यकतानुसार शिक्षण में प्रयोग कर सकते हैं।

15--ग्रामोफोन--यह भी श्रव्य साधन है। परन्तु इसका प्रयोग अब रेडियो एवं टेपरिकार्डर तथा टेलीविजन के कारण कम हो गया है। फिर भी शैक्षिक दृष्टि से अब भी एक सस्ता एवं उपयोगी यन्त्र है। इसके द्वारा महापुरुषों की अंकित वाणी संगीत, ड्रामों के संवाद, धार्मिक एवं पौराणिक देवी देवताओं की कहानियां आदि सुन कर मनोरंजन भी किया जा सकता है तथा शिक्षा भी ग्रहण की जा सकती है।

उपर्युक्त श्रव्य दृश्य साधनों अथवा उपकरणों के अतिरिक्त वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग, प्रयोगों का प्रदर्शन, कठपुतली, ड्रामा, नाटक, छाया चित्र तथा पर्यटन भी कुछ ऐसे साधन हैं जिसके द्वारा शिक्षण प्रभावशाली बनाया जा सकता है परन्तु इन्हें यन्त्रों के अन्तर्गत न मान कर क्रियात्मक साधनों के रूप में प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त सभी यन्त्रों एवं उपकरणों का विधिवत् प्रयोग ही शिक्षा प्रौद्योगिकी की मांग है। अतः अध्यापकों को न केवल इन उपकरणों की बनावट उनकी प्राप्ति का स्रोत, उनका चलाना, उनके मूल्य आदि की जानकारी हो बल्कि उनका किस परिस्थिति में किस प्रकार प्रयोग किया जाय, इसका ज्ञान भी आवश्यक है।

## शिक्षण यन्त्रों की उपादेयता

इनकी सबसे बड़ी उपादेयता तो यह है कि ये व्यक्तिगत शिक्षण की समस्या का निराकरण कर देते हैं। कुछ ऐसे यन्त्र हैं जो प्रश्न पूंछते हैं, अगली सूचना देते हैं। पुनः समीक्षा (review) तथा स्पष्टीकरण कर सकते हैं। चाहे कक्षा में 50 बालक हों या इससे भी अधिक टीचिंग मशीन द्वारा उनके प्रयोग विभिन्न स्तरों के विद्यार्थी वर्ग के अनुकूल आयोजित हों और यदि विधि पूर्वक प्रयोग में लाये जायं तो प्रत्येक बालक को व्यक्तिगत शैक्षिक अनुभव सुगमता से प्राप्त हो जाता है। इससे यह लाभ है कि विद्यार्थी अपनी गति के अनुसार कार्य कर सकता है। अर्थात् यदि वह तेज है तो तत्काल आगे बढ़ सकता है। उसके मार्ग में कोई रुकावट नहीं आयेगी और यदि वह मन्द गति से चलता है तो मशीन को कोई कष्ट नहीं होगा चाहे छात्र कितना ही समय क्यों न ले ले। मशीन द्वारा कक्षा कार्य हो या गृह कार्य दोनों पर नियंत्रण स्थापित कर व्यक्तिगत समर्थता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण कार्य आगे बढ़ाया जा सकता है।

उच्चकोटि के स्वशिक्षण प्रदान करने वाले तथा बड़े पैमाने पर प्रयोग में आने वाले ये यन्त्र शिक्षक की वर्तमान कार्य प्रणाली को ही बदल देंगें, अब उसका कार्य सुगम हो जायेगा और उसकी व्यावसायिक दक्षता बढ़ जायेगी। उसको अधिक शैक्षिक योग्यता, अनुभव, निर्णय-शक्ति तथा शिक्षा प्रविधि का ज्ञान आवश्यक है जो साधारण शैक्षिक प्रणाली द्वारा पढ़ाने में इतना आवश्यक नहीं है।

शिक्षण यन्त्रों द्वारा शिक्षण में विद्यार्थियों के अनुकूल प्रस्तुतिकरण की गति या पुनरावृत्ति में परिवर्तन लाया जा सकता है। ये यंत्र व्यक्तिगत सुविधानुसार मंद गति या तीव्र गति से अध्ययन करने वाले के अनुसार प्रोग्राम प्रस्तुत करते हैं।

शिक्षक द्वारा पढ़ाने में यह सम्भावित है कि मनोवैज्ञानिक कारणवश, परिस्थितिवश हैं अस्वस्थता की अवस्था में या थकावट के कारण अध्यापक अपने कर्त्तव्य का पालन ठीक तरह न कर उदासीनता प्रकट कर सकते हैं परन्तु शिक्षण यन्त्रों द्वारा पढ़ाने में यह अड़चन उत्पन्न नहीं होती।

शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी कई प्रकार की मशीनों का निर्माण हुआ है। 1926 में प्रथम शिक्षण यन्त्र ओहियो के सिडनीप्रेसी द्वारा बनाया गया। इसे बहु विकल्प परीक्षण (multiple choice type) कहते हैं। प्रश्न एक के बाद एक क्रमानुसार आते हैं वह एक बटन दबा कर प्रश्न का उत्तर चिह्नित करता है। यदि उत्तर ठीक आया तो अगला प्रश्न सामने आता चला जायेगा। परन्तु यदि उत्तर गलत हो गया तो छात्र को बराबर प्रयास करना पड़ेगा जब तक वह सही उत्तर नहीं खोज निकालेगा। इस प्रकार उसे अपनी सफलता का बोध तुरन्त हो जायेगा।

इतना होते हुये भी मशीन द्वारा पढ़ाये जाने में कुछ कमियां हैं, एक तो यही कि प्रत्येक वस्तु मशीन द्वारा नहीं पढ़ाई जा सकती है। दूसरे मशीनों द्वारा पढ़ाने के लिए सबसे पहली बड़ी कठिनाई उचित अभिक्रमित (Programmed instruction) बनाने की है। यह कार्य केवल विशेषज्ञों द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार के कार्यक्रमों में कुछ विशेषताओं का समादेश करना आवश्यक है परन्तु यह कठिन कार्य है और एतदर्थ सम्यक् प्रशिक्षण अभीष्ट है। जिन विशेषताओं एवं लक्षणों का समावेश आवश्यक है वह निम्नलिखित हैं :—

(1) प्रश्न सरल तथा लघु हों।

(2) विषय को जितने ही पदों में तोड़ सकें शिक्षण उतना ही उत्तम होगा अर्थात् पदों की संख्या अधिक हो।

(3) प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार किया जाय कि वे सरल से कठिन की ओर ले जाँय।

(4) पुनरावृत्ति त्वरित हो।

(5) अरोचकता दूर करने हेतु प्रश्नों आदि में विभिन्नता हो ।

(6) विषय का पूर्ण ज्ञान दिया जाय ।

उपर्युक्त विशेषताओं अथवा लक्षणों को ध्यान में रखकर यदि शिक्षण यन्त्रों (Teaching Machines) का निर्माण एवं प्रयोग किया जाय तो धन एवं श्रम दोनों की बचत होगी और साथ ही साथ कम समय में अधिकाधिक छात्र शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे ।

## अभिनव प्रवृत्तियां

### प्राथमिक शिक्षा की अभिनव प्रवृत्तियां

देश और समाज की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं के संदर्भ में शिक्षा की संकल्पना में नवीन आयामों का समावेश होना स्वाभाविक है । विद्यालयों का परम्परागत लक्ष्य पठन, लेखन और अंकगणित की शिक्षा देना तक ही सीमित रहा है, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षा में लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद जैसे राष्ट्रीय आदर्शों का समावेश अत्यन्त आवश्यक हो गया है । शिक्षा आयोग (1964–66) ने शिक्षा के मूल उद्देश्यों का निर्धारण इस प्रकार किया है :—

(1) शिक्षा का उत्पादन में योगदान ।

(2) लोकतन्त्र को सशक्त बनाने के लिये सामाजिक एवं राजनीतिक एकता को सुदृढ़ करना ।

(3) व्यक्तियों के चरित्र निर्माण हेतु शिक्षा की आधुनिकीकरण प्रक्रिया में गति लाना ।

अतः नवीन राष्ट्रीय आदर्शों तथा जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन स्वभाविक है शिक्षा व्यवस्था के अंगों में पाठ्यक्रम निर्माण, पुस्तक संरचना, प्रशिक्षण, शिक्षण, पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन आदि प्रमुख हैं । शिक्षा के नवीन आयामों के संदर्भ में शिक्षा की प्रमुख अभिनव प्रवृत्तियां निम्नांकित हैं :—

1—**पाठ्यक्रम नवीनीकरण**—पाठ्यक्रम को छात्रों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें केवल विषयगत तथ्यों सूचनाओं एवं सिद्धान्तों का ही समावेश न हो, अपितु बालकों की समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक कुशलताओं और मनोवृत्तियों को भी पर्याप्त स्थान दिया जाय । चरित्र सम्बन्धी विशेषतायें जैसे—सत्यता, कर्त्तव्य निष्ठा, नैतिकता, आत्मनिर्भरता तथा सहयोग आदि गुणों का समावेश भी नितान्त आवश्यक है । आजकल पाठ्यक्रम में विषयवस्तु अथवा शिक्षण की अपेक्षा सीखने के पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है । अधिगम अनुभवों एवं छात्रों की ज्ञानवर्द्धक क्रियाओं को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है । पाठ्यक्रम संतुलित होना चाहिये जिससे बालकों का शारीरिक बौद्धिक, नैतिक तथा भावात्मक विकास हो सके । इस दृष्टि से औपचारिक अध्ययन, रचनात्मक कार्य क्षमता एवं शारीरिक शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं के मध्य उचित संतुलन आवश्यक है ।

2—**पाठ्य पुस्तक संरचना**—परम्परागत पाठ्य पुस्तकों में विषय सम्बन्धी सूचनाएं, तथ्यों तथा घटनाओं को वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत कर दिया जाता था परन्तु अब इस बात पर भी बल दिया जाता है कि पाठ में ऐसे तत्वों का भी समावेश किया जाय जो छात्रों की चिन्तन क्षमता एवं बौद्धिक योग्यताओं के विकास में सहायक हो । इतना ही नहीं विषय–सामग्री की उपयुक्तता, जीवन में उसकी उपादेयता तथा बालकों की रुचियों पर भी यथेष्ठ ध्यान दिया जाता है ।

3—अध्यापक प्रशिक्षण—

(क) पूर्व सेवा प्रशिक्षण—प्रचलित प्रशिक्षण प्रणाली के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थियों को शिक्षा सिद्धान्त, शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के इतिहास तथा शिक्षण विधियों का ज्ञान कराने के साथ ही निश्चित संख्या में पाठों के शिक्षण का अवसर देकर उन्हें कक्षा शिक्षण के लिए तैयार किया जाता है ।

(ख) उद्देश्य विश्लेषण—यद्यपि हरबार्ट की पंचपदीय तथा अन्य शिक्षा शास्त्रियों के विचारों का पाठ नियोजन में अब भी काफी महत्व है परन्तु शैक्षिक उद्देश्यों के विश्लेषण पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है । पाठ में तथ्य, भाव, विचार, संकल्पना को ज्ञान पक्ष में, चिन्तन तुलना, वर्गीकरण, निष्कर्ष, अनुप्रयोग, बौद्धिक योग्यताओं सुपठन, सुलेख, अच्छे रेखा चित्रांकन, माडल या एलबम निर्माण आदि कौशल पक्ष, मूल्यों, आस्थाओं और आदतों को भाव पक्ष के अन्तर्गत सुनिश्चित कर प्रस्तुतीकरण विधियों पर विवेचन किया जाता है । शिक्षकों को इकाई पाठ योजना के निर्माण में अभ्यस्त कराया जाता है जिससे भविष्य में वे अध्यापक सुगमता पूर्वक कक्षा शिक्षण में सफल हो सकें ।

(ग) सूक्ष्म शिक्षण (माइक्रोटीचिंग)—शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से तथा अध्यापन कौशल विकसित करने की दृष्टि से अल्पकालीन उपयोगी उक्तियों का समावेश शिक्षण में गति प्रदान करता है । कक्षा में पाठ के शिक्षण से सम्बद्ध अनेक पक्ष हैं जैसे—पाठ संकेत को रचना, पाठ की भूमिका, प्रस्तुतीकरण, विवेचन, व्याख्या, उदाहरण, बोध प्रश्न तथा श्याम पट कार्य आदि। इन्हें शिक्षण कौशल कहा जाता है । इस प्रकार यदि किसी शिक्षण कौशल में अध्यापक अपेक्षित स्तर की दक्षता नहीं विकसित कर सका है तो निरंतर अभ्यास द्वारा उसकी क्षमता में वृद्धि की जा सकती है । सूक्ष्म शिक्षण इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु एक साधन है ।

धारणायें—

1—शिक्षण को विभिन्न कौशलों में बांटना जिससे सरलतापूर्वक मूल्यांकन हो सके ।

2—सक्रिय अनुक्रिया के सिद्धान्त पर सूक्ष्म शिक्षण का उपागम आधारित है । इसमें किसी की आवृत्ति से अध्यापक के कौशल का सुदृढ़ीकरण होता है ।

सूक्ष्म शिक्षण तकनीक के मुख्य पद—

1—पाठ नियोजन—किसी विशेष कौशल के लिए पाठ संकेत तैयार करना ।

2—शिक्षण—5 से 10 छात्रों तक की छोटी कक्षा में 5 से 10 मिनट तक शिक्षण । सूक्ष्म होने के कारण केवल एक कौशल पर ही आधारित रहता है ।

3—प्रतिपुष्टि (फीड बैक)—शिक्षण के बाद प्रशिक्षक अथवा दीक्षक की प्रतिक्रिया परामर्श ।

4—पुनः पाठ नियोजन—प्राप्त सुझावों के आधार पर 10 से 15 मिनट में पुनः पाठ नियोजन करना ।

5—पुनः शिक्षण—पहले की भांति छोटी कक्षा में पुनः अल्प कालीन शिक्षण तथा प्रशि- द्वारा पुनः वीक्षण ।

6—पुनः प्रति पुष्टि—शिक्षण के बाद प्रशिक्षणार्थी तथा प्रशिक्षक के बीच पुनः विचारों आदान-प्रदान ।

घ--सेवारत प्रशिक्षण---प्राय: एक बार प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद कोई शिक्षक कक्ष शिक्षण के लिए सक्षम मान लिया जाता है किन्तु शिक्षा एवं शिक्षण के क्षेत्र में नये-न प्रयोग और परीक्षण हो रहे हैं। साथ ही साथ ज्ञान की विविध शाखाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अतः इसी उद्देश्य से शिक्षकों के सेवा कालीन प्रशिक्षण पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा है। एक निश्चित अवधि (प्राय: 5 वर्ष) के बाद शिक्षकों का कम से कम दो सप्ताह के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों पर पुनर्बोधन किया जाता है। पुनर्बोधन में शिक्षकों के विषय ज्ञान को अधुनातन (Modern) बनाने के साथ ही उन्हें नवीनतम शिक्षण विधियों से भी अवगत कराया जाता है।

च--विषय शिक्षण---विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों में भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन आदि प्रमुख हैं। इनमें से प्रत्यक विषय शिक्षा की नवीनतम प्रवृत्तियों से प्रभावित हुआ है और विशेष रूप से विज्ञान शिक्षण।

प्रारम्भ में विज्ञान शिक्षण में केवल विषय पक्ष पर ही अधिक बल दिया जाता था परन्तु अब निरीक्षण, प्रेक्षण, सम्बन्ध, मापन, वर्गीकरण, सम्प्रेषण, निष्कर्ष, पूर्वकथन परिकल्पना तथा प्रयोग आदि पर अधिक बल दिया जाता है।

छ--उपचारिक शिक्षण---किसी एक ही कक्षा में छात्रों को बौद्धिक स्तर पर लाया जा सकता है।

ज--निवर्गशाला योजना---इस प्रकार के विद्यालयों में कक्षाएं अथवा श्रेणियां नहीं भेजी हैं। छात्रों के उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण करने के उद्देश्य से वार्षिक परीक्षाएं भी नहीं ली जाती हैं। समान योग्यता एवं स्तर के आधार पर छात्रों को कई समूहों में बांट लिया जाता है तथा प्रत्येक छात्रों की प्रगति पर ध्यान दिया जाता है। अतः ऐसा सम्भव हो सकता है कि किसी विषय में अन्य सहपाठियों से पीछे हो परन्तु अन्यत्र आगे भी हो सकता है। अन्त में वार्षिक परीक्षा होती है।

झ--ह्रास-अवरोध---इसकी समस्या प्राथमिक स्तर पर होती हैं।

ट---पर्यवेक्षण---अब निरीक्षण के साथ आधुनिक पर्यवेक्षण के नये आयाम जोड़े गये इसमें पर्यवेक्षक को एक कुशल अध्यापक होने के साथ मित्र, मार्गदर्शक तथा समन्वयक भी होना चाहिये।

ठ---मूल्यांकन---परीक्षा की परम्परागत प्रणाली में अनेक दोष हैं।

रटने की क्षमता की जाँच होती है। मूल्यांकन को नवीन संकल्पना में दो पक्ष निहित हैं--

(1) मासिक या त्रैमासिक परीक्षण, (2) वार्षिक परीक्षा प्रश्न पत्रों में लघु उत्तरीय वस्तुनिष्ठ, वर्णनात्मक आदि विविध प्रकार के प्रश्नों का समावेश रहता है।

ड--संस्थागत नियोजन--विद्यालय की आवश्यकताओं तथा समस्याओं आदि का निर्धारण वरीयता क्रम में उपलब्ध साधनों की सहायता से किया जाता है। इसके समाधान की सम्यक योजना ही संस्थागत नियोजन है।

ढ--विद्यालय संकुल--केन्द्रीय विद्यालय का रूप प्राथमिक विद्यालय को दिया जाता तथा समीपवर्ती विद्यालय को सम्बद्ध किया जाता है। इस प्रकार विद्यालय एक परिवार है। इस शिक्षालय के सुधार का कार्यक्रम होता है। संकुल द्वारा शिक्षा कार्यों में गुणात्मक सुधार होते हैं तथा पारस्परिक सौहार्द की भावना की वृद्धि होती है।

# खण्ड—ख

## शैक्षिक मूल्यांकन

# 1--शैक्षिक मूल्यांकन

**विषय प्रवेश--**

अपनी प्रारम्भिक अवस्था में मानव अनेक प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करता रहा। ये अनुभव बड़े असम्बन्धित तथा अव्यवस्थित थे। यद्यपि यह अनुभव किन्हीं वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा सत्यापित नहीं थे। फिर भी उनकी सत्यता में किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं था क्योंकि वे लम्बे समय के प्रत्यक्षीकरण के परिणाम थे। धीरे-धीरे जांच की विधियों का जन्म हुआ, प्रारम्भ में यह जांच विधियां केवल भौतिक विज्ञानों तक ही सीमित थीं। किन्तु धीरे-धीरे इनका प्रयोग सर्व व्यापी हो गया। थार्मडाइम ने इस सम्बन्ध में लिखा है :--

"Any thing that exists at all, exists in some quantity, any thing that exists in some quantity is capable of being measured".

अर्थात् "जिस भी वस्तु का अस्तित्व होता है, उसका कुछ परिमाण होता है तथा जो भी वस्तु किसी परिमाण में अस्तित्व रखती है, मापन के योग्य होती है" सभ्यता के विकास के साथ ही मनुष्य को दैनिक जीवन की वस्तुओं की लम्बाई, चौड़ाई, क्षेत्रफल, माप, तौल, ऊष्मा आदि के मापने का ज्ञान होता गया। हमें आज मापन की हर क्षेत्र में आवश्यकता पड़ने लगी। मापन हमारे जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। हर वस्तु के मापन की कोई न कोई इकाई निश्चित की गई है। अतः किसी वस्तु के गुणों का उचित इकाई में निर्धारित करना ही मापन है।

मूल्यांकन का अर्थ—मूल्यांकन शब्द 'मूल्य' और 'अंकन' दो शब्दों से मिलकर बना है। अर्थात् किसी वस्तु के गुण दोषों का मूल्य अंकों में निर्धारित करना है। अन्य शब्दों में मूल्यांकन का अर्थ है किसी वस्तु, कार्य या व्यक्ति के गुण दोषों का विवेचन करके उसका उचित मूल्य निश्चित करना। मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

वर्तमान समय में प्रत्येक वस्तु का मापन एवं मूल्यांकन किया जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में इसका व्यापक प्रयोग हुआ है। साधारणतः मूल्यांकन का अर्थ बालक की शिक्षा से प्राप्त योग्यता निर्धारण से लिया जाता है किन्तु यह बहुत संकुचित अर्थ है। अब मूल्यांकन का अर्थ है बालक के सर्वांगीण विकास की प्रगति की जानकारी करना। बालक के शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं सामाजिक क्षेत्र के क्रिया-कलापों का मूल्यांकन करना ही सही मूल्यांकन है।

शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह विद्यालय तक ही सीमित नहीं है। इसमें छात्र की रुचियों, आदतों, कार्यों एवं क्षमताओं तथा व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन आते रहते हैं।

टारगरसन तथा एडम्स ने मूल्यांकन के सम्बन्ध में लिखा है कि "किसी वस्तु या प्रक्रिया का मूल्य निश्चित करना है।"

क्वीलिन तथा हन्ना ने लिखा है कि "छात्रों के व्यवहार में शिक्षालय द्वारा किये गये परिवर्तनों के विषय में प्रमाणों को एकत्रित करना एवं उनकी व्याख्या करना ही मूल्यांकन है।"

इस प्रकार मूल्यांकन के तात्पर्य हैं शिक्षण प्रक्रिया तथा सीखने की क्रियाओं से छात्र के व्यवहार में उत्पन्न परिवर्तनों एवं अनुभवों के विषय में निर्णय लेना।

मापन का अर्थ—मापन एक सीमित प्रक्रिया है। यह मूल्यांकन का एक अंग है। मापन का अर्थ है--संक्षिप्त, यथार्थ परिमाणात्मक मूल्य जैसे सेंटीमीटर में किसी रेखा की लम्बाई या किसी परीक्षण में किसी विद्यार्थी के अंक प्राप्त करना और किसी निश्चित क्षेत्र या गुण का मूल्य ठहराना।

हेम स्टेडर महोदय ने व्यक्त किया है "मापन को उस प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति या वस्तु, जिसमें विषमतायें निहित हों, कि संख्यात्मक व्याख्या की जावे।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि--

मनुष्य का यह स्वाभाविक गुण है कि वह प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन किसी न किसी रूप में करना चाहता है। पहले किसी वस्तु का मूल्यांकन गुण-दोषों एवं आकार-प्रकार के आधार पर किया जाता था। धीरे-धीरे मूल्यांकन एवं मापन का उद्भव हुआ। पहले मौखिक परीक्षण हुआ करते थे। सर्व प्रथम अमरीका के होरेसमैन को लिखित परीक्षाओं के निर्माण का श्रेय प्राप्त हुआ। इन्होंने मौखिक परीक्षाओं को दोष पूर्ण कहा तथा लिखित परीक्षाओं का शुभारम्भ किया। लिखित परीक्षाओं में निबंधात्मक परीक्षाओं का प्रचलन हुआ। निबंधात्मक परीक्षाओं में अनेक त्रुटियों एवं दोषों का ज्ञान होने पर उनकी आलोचना होने लगी। बाद में शिक्षा के क्षेत्र में विश्वसनीय एवं वस्तुनिष्ठता को ध्यान में रखकर सही मूल्यांकन हेतु वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का उदय हुआ।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का जन्मदाता वास्तव में थार्नडाइक था। अमरीका के डा० जे० एम० राइस ने भी इस ओर बहुत कार्य किया है। थार्नडाइक ने शैक्षिक मूल्यांकन या मापन में एक पुस्तक प्रकाशित किया जिसका नाम था An Introducton to the theory of Mental and Social Measurement, 1905 में बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण को प्रकाशित किया गया। कालान्तर में इनका सभी प्रगतिशील देशों में अनुवाद किया गया। व्यक्तित्व परीक्षणों में क्रेपलीन तथा सोमर के उन्मुक्त साहचर्य, वुडवर्थ के "परसनल डेटासीट" से सहायता मिली। 1939 ई० में अभिक्षेपक परीक्षण का आविष्कार हुआ। पिछले 30 वर्षों में मापन एवं मूल्यांकन के क्षेत्र में परीक्षणों की भरमार होने लगी। अपने देश में भी अनेक परीक्षण बनाए गय। प्रचलित 'भाटिया बटरी टस्ट' बहुत प्रसिद्ध ह।

परीक्षण की आवश्यकता--

1--परीक्षण या परीक्षा छात्रों को अध्ययन करने के लिए प्रेरित करती है।

2--इससे छात्रों को अपनी दुर्बलता का ज्ञान होता है।

3--छात्रों का वर्गीकरण करने में सहायता मिलती है।

4--छात्रों की रुचियों का ज्ञान होता है।

5--छात्रों में परिश्रम करने की आदत बनती है।

6--विचारों की अभिव्यक्ति का साधन।

7--परीक्षण छात्रों को अपने पाठों को दुहराने का अवसर देते हैं।

मूल्यांकन और मापन की आवश्यकता--छात्रों की क्षमताओं तथा व्यवहार परिवर्तन का पता लगाने के लिए मूल्यांकन की शिक्षा में नितांत आवश्यकता है।

छात्रों के दृष्टिकोण से मूल्यांकन की आवश्यकता--

1--छात्र को अपने गुण-दोषों का ज्ञान होता है। जिसके आधार पर वह सुधार का प्रयास करता है।

2--छात्रों को प्रगति की प्रेरणा।

3--कार्य की भिन्नता का ज्ञान होता है।

4--क्षमताओं का ज्ञान।

5--कार्य करने में तत्परता का विकास होता है।

6--सीखने की प्रक्रिया में स्तरानुसार पहुंचने के ढंग का बोध होता है ।

7--स्पर्धा की भावना से लाभ ।

8--व्यवहारों में परिवर्तन करने का ढंग ।

9--श्रम करने की क्षमता का विकास ।

10--आत्मविश्वास एवं भाव प्रकाशन के अच्छे अवसर ।

शिक्षक के दृष्टिकोण में मूल्यांकन की आवश्यकता--

1--अध्यापक को शिक्षण की विधियों की उपयुक्तता का ज्ञान ।

2--अध्यापक को अपने श्रम के मूल्य का ज्ञान ।

3--छात्रों की प्रगति का ज्ञान ।

4--छात्रों के मानसिक स्तर की भिन्नता का ज्ञान ।

5--शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं का ज्ञान ।

6--भविष्य के निर्देशन का ज्ञान ।

7--शिक्षण के परिणामों एवं उपलब्धियों का ज्ञान ।

8--विशिष्ट एवं पिछड़े बालकों की शिक्षा व्यवस्था का ज्ञान ।

9--छात्रों के वर्गीकरण करने में सरलता ।

अभिभावकों के दृष्टिकोण से मूल्यांकन की आवश्यकता--

1--बालक की प्रगति का ज्ञान ।

2--बालक की क्षमता, रुचि, योग्यता का ज्ञान ।

3--बालक के सुधार के लिये अवसर की प्राप्ति ।

4--छात्र को पाठ्यक्रम चयन का ज्ञान ।

सामाजिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन की आवश्यकता--

1--शिक्षा को सामाजिक मूल्यों के आधार पर होना ।

2--शिक्षा के स्तर में सुधार ।

3--विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं का समाधान ।

4--पाठ्यक्रम सामाजिक वातावरण के अनुकूल बनाना ।

5--शिक्षा प्रशासन की सफलता का ज्ञान ।

6--शिक्षा का उन्नयन ।

7--शिक्षा के राष्ट्रीय स्तर का ज्ञान ।

8--शिक्षा नीति का ज्ञान ।

शैक्षिक मूल्यांकन के विभिन्न सोपान--

शिक्षा और मूल्यांकन परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। शिक्षण प्रक्रिया के जि प्रकार कुछ सोपान होते हैं उसी प्रकार मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपानों की भी विवेचना की ज सकती है।

संक्षेप में मूल्यांकन प्रक्रिया में कुछ निश्चित सोपान चरण होते हैं जो निम्न हैं :--

मूल्यांकन के सोपान--

1--शैक्षिक उद्देश्य का निर्धारण।

2--शैक्षिक उद्देश्यों का चयन।

3--उद्देश्य का स्पष्टीकरण।

4--परिस्थितियों का ज्ञान।

5--परीक्षणों की परीक्षा।

6--मूल्यांकन विधियों की रचना।

7--प्रविधि का प्रयोग प्रभावों का लेख।

8--लेखबद्ध प्रमाणों की व्याख्या।

शैक्षिक उद्देश्य का निर्धारण--कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखते हुए सर्वप्र शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण किया जाना आवश्यक है जैसे छात्र, समा विषय वस्तु।

छात्र--शिक्षण प्रक्रिया का प्रमुख विन्दु है। छात्र का शारीरिक, मानसिक, सामाजि और संवेगात्मक विकास कैसे होता है। योग्यताएं तथा क्षमतायें क्या हैं? इन सभी का ज्ञान प्राप्त होता है।

समाज--जिस समाज में बालक रहता है उससे सम्बन्धित मान्यताएं, दर्शन और सामाजि आवश्यकताओं, आकांक्षाओं के अनुरूप छात्र का विकास होना चाहिए।

विषय वस्तु की प्रक्रिया--विद्यालय में छात्र जिन विषयों का अध्ययन करता है उ सभी का प्रभाव होता है। सामाजिक अध्ययन से सामाजिक चेतना और गणित से त और चिन्तन का विकास होता है।

शिक्षा स्तर--प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का उद्देश्य बदलता रहता है इसलिये स्तर की देख रेख ही उद्देश्यों का निर्धारण करना है।

शैक्षिक उद्देश्य का चयन--शैक्षिक उद्देश्य निर्धारण करने में विषय वस्तु या पाठ्यक्रम सम्बन्धित उद्देश्य होना चाहिये।

उद्देश्य का स्पष्टीकरण--उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिये विस्तार से व्याख्या की जाय व्याख्या बालक के व्यवहार से सम्बन्धित परिवर्तनों के रूप में की जाय।

परिस्थितियों का ज्ञान--उस स्थिति के जिसमें छात्रों द्वारा निश्चित व्यवहार करना है इसलि उन्हें ऐसी परिस्थितियों में रखा जाय जिससे वे वांछित व्यवहार कर सकें।

परीक्षणों की परीक्षा एवं चयन--परीक्षणकर्त्ता परीक्षण एवं विधियों का चयन करता है तथा विभिन्न उपकरणों का प्रयोग करते समय आंकड़े एकत्रित करता है ।

मूल्यांकन की प्रविधियों की रचना--बालक के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों को जानने के लिये मूल्यांकन की विधियों की रचना करनी पड़ती है ।

प्रविधि का प्रयोग व प्रमाणों का लेखा--किसी प्रविधि का किसी परिस्थिति में जब प्रयोग होता है तो बालक के व्यवहार के सम्बन्ध में लेखा तैयार करना पड़ता है ।

लेखबद्ध प्रभावों की व्याख्या--मूल्यांकनकर्त्ता बालक व्यवहार के सम्बन्ध में आंकड़ों को लेखबद्ध करता और व्याख्या और विश्लेषण करता है। वह विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकालता है । ली (Lee) के अनुसार मूल्यांकन के सोपान में परिवर्तन--

(1) उद्देश्यों का निर्धारण एवं परिभाषिकरण ।

(2) विभिन्न अनुभवों की योजना बनाना ।

(3) विभिन्न उपकरणों के माध्यम से आंकड़े एकत्रित करना ।

व्यवहार परिवर्तन के क्षेत्र--

(क) संवेगात्मक पक्ष ।

(ख) भावात्मक पक्ष ।

(ग) क्रियात्मक पक्ष ।

शैक्षिक मूल्यांकन के पक्ष--

- ज्ञानात्मक
- संवेगात्मक
- मनः चालित

शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सर्वोमुखी सर्वांगीण विकास करना है । बालक के व्यवहार में परिवर्तन करके व्यवहार तथा व्यक्तित्व में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना है । यह कार्य तभी सम्भव है जब बालक अथवा छात्र के व्यक्तित्व के सभी आयामों तथा उसके पर्यावरण का ज्ञान शिक्षक को हो । संक्षेप में कहा जा सकता है कि बालक के आन्तरिक तथा वाह्य दोनों व्यवहार को देखकर उसके व्यक्तित्व के सन्दर्भ में पूर्व मंथन किया जा सकता है । मात्र पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं अपेक्षित है बल्कि शैक्षिक अभिक्षमता; विशेष योग्यता रुचि; अभिवृत्ति स्वास्थ्य एवं शारीरिक दशाएं घर तथा पारिवारिक सम्बन्ध सांवेगिक तथा सामाजिक समायोजन की स्थिति इत्यादि के विषय की जानकारी आवश्यक है। इनके परिपेक्ष्य में ही शैक्षिक प्रक्रिया का निष्पादन तथा शैक्षिक उद्देश्यों तथा अधिगम अनुभवों का निर्धारण हो सकता है।

जिस प्रकार शैक्षिक परिवेश के फलस्वरूप बालक के व्यवहार में परिवर्तन आते हैं। ठीक उसी प्रकार बालक का समय-समय पर व्यावहारिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन होता रहे तो उसके व्यवहार में परिवर्तन होते रहते हैं। मूल्यांकन करने से जो भी सूचना छात्र को मिलती है उससे वह व्यवहार में परिवर्तन कर सकता है या फिर स्वतंत्र व्यवहार मनोवैज्ञानिक आधार पर संचालित होते रहते हैं । डा० बी० एस० ब्लूम ने शैक्षिक क्रिया को तीन पक्षों में विभाजित किया है ।

(1) ज्ञानात्मक पक्ष (Congnitive Aspect) ।

(2) भावात्मक या संवेगात्मक (Affective Aspect) ।

(3) मनः चालित या शारीरिक कौशल या क्रियात्मक पक्ष ।

ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Aspect)--

जब हम नवीन सूचनाओं, तथ्यों, घटनाओं, प्रक्रियाओं व सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करते हैं तो वह मूल्यांकन का ज्ञानात्मक पक्ष कहलाता है ।

ज्ञानात्मक पक्ष में जिस ज्ञान का बोध होता है उसे Prof. Bloom ने निम्न ढंग से व्यक्त किया है :--

(1) विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान--विशिष्ट व्यक्ति या देश से सम्बन्धित तिथियों का ज्ञान, जैसे भगवान बुद्ध, महात्मा गांधी, 15 अगस्त, 26 जनवरी, 2 अक्तूबर इत्यादि ।

(2) विशिष्ट तथ्यों को प्राप्त करने की विधियों का ज्ञान ।

(3) परम्पराओं तथा मान्यताओं का ज्ञान ।

(4) घटनाओं की गतिविधियों व प्रक्रियाओं का ज्ञान ।

(5) मापदण्डों या कसौटी का ज्ञान ।

(6) प्रणालियों का ज्ञान ।

(7) किसी विषय के वर्गीकरण तथा श्रेणियों का ज्ञान ।

(8) सिद्धान्तों तथा सामान्यीकरण का ज्ञान ।

उपर्युक्त ज्ञान को छः स्तर से प्राप्त किया जाता है (1) प्रत्यास्मरण (2) पहचान या अभिज्ञान (3) बोध या व्याख्या (4) अनुप्रयोग (5) विश्लेषण () संश्लेषण तथा मूल्यांकन ।

बोध—— Comprehension

बोध स्तर की योग्यता में पदों, सम्बोधों, संकेतों, परिभाषाओं, सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं तथा सूत्रों को समझने की शक्तियों का मापन होता है इसके अन्तर्गत निम्नांकित आते हैं ।

(1) मध्यान्तर (Translation) विचार का एकभाषा में दूसरी भाषाओं में भाव संप्रेषण ।

(2) व्याख्या (interpretation) विचारों की व्याख्या करना ।

(3) बहिर्वेशन (Extrapolation) विचारों का तुलनात्मक अध्ययन मिलते जुलते सम्बन्धों का अन्तर ढूढ़ना, विषमताओं के आधार पर वर्गीकरण और तथ्यों को विभिन्न ढगों से अभिव्यक्त करने की योग्यता आदि ।

(4) अनुप्रयोग (application) इसके अन्तर्गत सम्बन्धों का नवीन परिस्थितिओं में प्रयोग करने की योग्यता का मापन होता है ।

(5) विश्लेषण——इसमें किसी विचार या तथ्य को उसके विभिन्न अवयवों में विभक्त करने की योग्यता आती है ताकि उस विचार अथवा तथ्य में सन्निहित सापेक्षित क्रम परम्परा तथा पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाय। विश्लेषण में निम्नलिखित दृष्टव्य है ।

(1) तत्वों का विश्लेषण (Analysis of elements)——तथ्य में विभिन्न तत्वों का तादत्मीकरण अर्थात् अवानीत पूर्ण धारणा पूर्व धारणाओं के प्रत्याभिलान की योग्यता तथा परिकल्पनाओं से तथ्यों को पहचानने की योग्यता ।

(2) सम्बन्धों का विश्लेषण (Analysis of Relationship) तथ्यों के विभिन्न अवयवों में संशोधन तथा पारस्परिक प्रभाव के निरुपण की योग्यता ।

संश्लेषण (Synthesis)——

संश्लेषण में तथ्यों को अन्य तथ्यों के साथ समन्वित करके एक नये तथ्य के रूप में प्रस्तुत करने की योग्यता का मापन होता है । इसके अन्तर्गत निम्नांकित बातें सम्मिलित हैं :

(1) सम्प्रेषण को नये रूप में प्रकट करना——किसी विचार एवं तथ्य की मूल भावना को स्पष्ट करने, तथा कौशल तथा व्यक्तिगत अनुभवों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करने की योग्यता ।

(2) नियम अथवा संक्रियाओं को प्रस्तावित करना एवं परिकल्पनाओं के परीक्षण का ढंग प्रस्तावित कर सकने की योग्यता ।

(3) अमूर्त सम्बन्धों का उद्भूत करना——दिये गये प्रदत्तों के आधार पर व्यापकीकरण अथवा नियमीकरण की योग्यता ।

मूल्यांकन—इसके अन्तर्गत तथ्यों की अन्य तथ्यों से तुलता करके किसी निर्धारित निष्कर्ष के अनुसार इनके सापेक्षित मूल्यांकन एवं महत्व पर निर्णय करने की योग्यता आती है। इसमें निम्नलिखित दो बाते हैं :

(1) आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर मूल्यांकन—किसी तथ्य की शुद्धता का मूल्यांकन तथा अन्य आन्तरिक निष्कर्ष के आधार पर कर सकने की योग्यता।

(2) वाह्य विषय के आधार पर मूल्यांकन—किसी तथ्य की शुद्धता का मूल्यांकन चयनित अथवा पूर्व निर्धारित विषय के अनुसार कर सकने की योग्यता।

भावात्मक क्षेत्र (Affective aspect)—भावात्मक क्षेत्र में मुख्यत: अवधान अभिरुचि अभिवृत्ति, अनुभूति तथा चरित्रगत विशेषताओं का मूल्यांकन सन्निहित है। डा० ब्लूम ने इसमें निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया है :

(1) ग्राहिता अथवा ग्रहणशीलता (Receiving or atteading)—इसके अन्तगत हम छात्र की इस योग्यता का मूल्यांकन करते हैं कि वह किसी घटना तथा उत्तेजना को हृदयगंम करने के लिये अन्त तक इच्छुक है। इसके तीन सोपान हैं।

1—अभिज्ञता—किसी घटना के प्रति साधरण प्रदर्शन की योग्यता।

2—ग्रहण करने की संकल्पना—किसी घटना के प्रति अवधानित होने की योग्यता।

3—नियन्त्रित अथवा चयनित अवधान—किसी घटना के प्रति अवधान को नियन्त्रित करने की योग्यता।

(1) प्रतिक्रियात्मकता—इसके अन्तर्गत हम इस बात का मूल्यांकन करना चाहते हैं कि छात्र किसी घटना अथवा उत्तेजना के प्रत्यक्षीकरण के पश्चात् उसे अच्छी तरह समझने के लिये किस सीमा तक सक्रिय है तथा वहां तक रुचि प्रदर्शित कर रहा है। इसके अन्तर्गत निम्न सोपान है।

1—प्रतिक्रिया की स्वीकृति—किसी घटना के प्रति छात्र के भाव अथवा विचार प्रस्तुत करने की योग्यता की स्वीकृति।

2—प्रतिक्रिया के प्रति संवल्पिता—किसी घटना के प्रति छात्र के भाव अथवा विचार प्रकट करने की अभिलाषा।

2—अनुक्रिया की सन्तोषानुभूति—किसी घटना के प्रति अनुक्रिया करने में छात्र के सन्तोषानुभूति की सीमा।

मूल्यन—

इसके अन्तर्गत हम इस तथ्य का मूल्यांकन करते हैं कि किसी घटना के प्रति छात्र की अभिवृत्ति किस प्रकार की है। वह उसका मूल्यन किस प्रकार करता है। उसके प्रति छात्र की प्रति बद्धता किस अंश तक है। इसमें निम्नलिखित समन्वित है :

1—मूल्य का प्रतिग्रहण—

किसी घटना, विचार अथवा व्यवहार के मूल्य को स्वीकार करने की इच्छा का प्रकटीकरण।

2—मूल्य के लिये वरीयता—किसी घटना, विचार अथवा मूल्य को वरीयता प्रदान करना अथवा उसके प्रति प्रतिवद्धता का प्रदर्शन।

3—प्रतिबद्धता—किसी घटना अथवा मूल्य के प्रति पूर्णरूपेण प्रतिबद्धता तथा सांवेगिक प्रतिग्रहणता तथा लगाव।

संगठनात्मकता—

छात्र किसी घटना अथवा विचार के प्रति अपने अन्तर्गत मूल्यों का निर्धारण करते समय यह पाता है कि एक से अधिक मूल्य प्रासंगिक हैं तब वह उन मूल्यों को एक में संगठित करना चाहता है तथा उनमें पारस्परिक संबंध खोजना चाहता है। ऐसी स्थिति में वह मूल्यों के प्रति संकल्पना का निर्माण करता है तथा उन्हें एक मूल्य प्रतिमान में नियोजित करता है। अतः इसके अन्तर्गत हम इस बात का मूल्यांकन करना चाहते हैं कि छात्र में किस सीमा तक मूल्य के संगठन की क्षमता विद्यमान है।

5—मूल्य अथवा मूल्यों द्वारा चरित्र निर्माण—किसी भी घटना अथवा विचार के मूल्यन के पश्चात् व्यक्ति के अन्तमन में ऐसे मूल्यों एवं संगठित प्रतिमान उभरता है। यह प्रतिमान उसके व्यवहार को प्रभावित तथा नियन्त्रित करता है। अतः उसके अन्तर्गत हम इस बात का मूल्यन करते हैं कि छात्र के व्यक्तित्व को इस प्रकार के मूल्यों ने जहाँ तक प्रभावित किया है तथा वातावरण के किसी तत्व के प्रति छात्र का विश्वास, विचार तथा अभिवृत्ति किस प्रकार की है।

कौशलात्मक क्षेत्र (मनः चालित पक्ष)—

इसमें शारीरिक कौशल सम्बन्धी क्रियात्मक प्रयोगात्मक योग्यता का मूल्यांकन किया जाता है। शारीरिक तथा मानसिक कौशलों, पदार्थों तथा वस्तुओं की जोड़-तोड़ अथवा ऐसी क्रियायें करता है जिसमें मनः शारीरिक समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। शारीरिक शिक्षा व्यावसायिक एवं तकनीकी की शिक्षा में बालक के व्यवहार का क्रियात्मक पक्ष मुख्य होता है इसके छः प्रकार हैं :—

1—उत्तेजन—इसमें कार्य के प्रति उत्तेजना लायी जाती है।

2—कार्यवाही—उत्तेजना के आधार पर गत्यात्मक क्रिया सम्पादित करता है।

3—नियंत्रण—इसके द्वारा क्रिया पर नियन्त्रण किया जाता है।

4—समायोजन—अनेक क्रियाओं पर नियत्रण के आधार पर यहां समायोजन लाया जाता है।

5—स्वाभावीकरण—सामान्य दशा में कार्य एक शैली बन जाती है तथा उसमें एक विशेषगति वस्तुओं से होने लगती है।

इसका सम्बन्ध साहित्य में लिखावट तथा वाणी से है। गणित में ज्यामिति, टंकन, सिलाई मशीन चलाने इत्यादि में शारीरिक कौशलों की आवश्यकता होती है।

तीनो पक्षों की सम्बद्धता—

किसी एक क्षेत्र में एक उद्देश्य के अर्जन का प्रभाव अन्य पक्षों पर भी पड़ सकता है से ज्ञानात्मक में अनुप्रयोग की योग्यता यदि छात्र में विकसित हो तो संवेगात्मक में सका प्रभाव रसानुभूति के विकास में पड़ेगा। इसी प्रकार सकारात्मक अभिवृत्ति संवेगात्मक क्षेत्र) विषय वस्तु के श्रेष्ठ तक बोध (ज्ञानात्मक क्षेत्र) में सहायक हो सकता है। हस्त कौशल का विकास वैज्ञानिक दृष्टिकोण (संवेदनात्मक क्षेत्र) तथा बोध (ज्ञानात्मक क्षेत्र) की वृद्धि का कारण हो सकता है।

इन तीनों क्षेत्रों का आपस में बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है।

तीनों पक्षों का मूल्यांकन

ज्ञानात्मक पक्ष की योग्यताओं का मूल्यांकन, लिखित तथा मौखिक परिक्षाओं से संबंध । शरीरिक कौशकों का मूल्यांकन कार्य के प्रेक्षण तथा दक्षता प्रदर्शन आदि के द्वारा ल्यांकन हो सकता है।

संवेदनात्मक पक्ष की क्षमताओं का मूल्यांकन प्रेक्षण, टकनीकों पांच सूचियों निर्धारण पियों रुचिपत्रियों, प्रश्नावली साक्षात्कार एवं अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा किया ता है।

शैक्षिक मूल्यांकन के साधन एवं विधियां--

(अ) लिखित

(ब) मौखिक

(स) निरीक्षण

(द) अभिलेख

ज्ञानात्मक, संवेगात्मक, क्रियात्मक कौशलों के मूल्यांकन हेतु अनेक साधनों का उपयोग किया जाता है जो निम्न है :--

कार्यों के आधार पर वर्गीकरण (Function)--

(1) सम्प्राप्ति परीक्षण (Attainment test)--

(2) निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic test)

(3) पूर्वकथन (Prognostic) या अभिरूचि परीक्षण

(4) बुद्धि परीक्षण

(5) व्यक्तित्व परीक्षण

रूपों या आकार (Forms) के आधार पर वर्गीकरण--

(1) मौखिक परीक्षण

(2) निबन्धात्मक परीक्षण

(3) वस्तुनिष्ठ परीक्षण

(4) कौशल प्रदर्शन परीक्षण

(5) सामूहिक आलेख प्रगति विवरण (व्यक्तित्व सम्बन्धी)

भाषा के आधार पर वर्गीकरण

(1) शाब्दिक परीक्षण

(2) अशाब्दिक परीक्षण

(3) कौशल प्रदर्शन परीक्षण

अन्य आधार पर वर्गीकरण

(1) क्षमता परीक्षण (Power test)

(2) गति परीक्षण (Speed test)

(अ) लिखित--छात्रों के पाठ्य विषयक ज्ञान परीक्षण के लिए लिखित आधार पर प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें तीन श्रेणी में रखते हैं :--

(1) परम्परागत या निबन्धात्मक प्रश्न-पत्र

(2) वस्तुनिष्ठ या नवीन प्रकार के प्रश्न-पत्र

(3) उपरोक्त प्रश्न-पत्रों का मिला जुला रूप

निबन्धात्मक लिखित परीक्षण--इसका प्रयोग बहुत समय से विद्यालय में हो रहा ह । इस लिये इसे परम्परागत परीक्षण भी कहते हैं । इसमें 5 से 10 प्रश्न पूछे जाते हैं तथा अधिक से अधिक 3 घन्टे का समय दिया जाता है । प्रश्नों की रचना के अनुसार प्रत्येक प्रश्न का उत्तर एक निबन्ध के रूप में हो जाता है जैसे विवेचना करो, कथन को पुष्टि करो, पक्ष या विपक्ष में मत प्रकट करो, कारण बताओ, समीक्षा करो, अर्थ स्पष्ट करो, चरित्र चित्रण करो, अन्तर बताओ, तुलना करो, आदि आदेश प्रश्न पत्र में दिये जाते हैं ।

दोष--

(1) अपर्याप्त नमूनाकरण

(2) अंक प्रदान करने में व्यक्तिकता

(3) परीक्षक का परीक्षार्थी से सम्बन्ध

(4) परीक्षक का व्यक्तिगत दृष्टिकोण

(5) लिखने की गति

(6) अपूर्ण उत्तरों को पूर्ण समझना

(7) विश्वसनीयता एवं वैधता

गुण--

(1) प्रश्न-पत्र बनाने तथा प्रबन्ध करने की सरलता

(2) उच्चतर मानसिक योग्यता का मापन

(3) भाषा लिखने का प्रशिक्षण

(4) स्मरण और पहचान की क्षमता का मापन

वस्तुनिष्ठ प्रकार के लिखित परीक्षण--

निबन्धात्मक परीक्षा के दोष को दूर करने के लिए ऐसे प्रश्न-पत्र का निर्माण किया गया जिसमें पाठ्यक्रम के प्रत्येक अंश से प्रश्न पूछे जाते हैं । इसे चाहे जो परीक्षक जितनी बार जांचे समान मिलेगा । इनके उत्तर निश्चित होते हैं तथा जांचने में आत्मनिष्ठता का दोष नहीं आने पाता । इसलिए इन परीक्षणों को वस्तुनिष्ठ परीक्षण कहते हैं । वस्तुनिष्ठ परीक्षण में दो प्रकार के प्रश्न होते हैं--

(1) प्रत्याह्वान या पुनः स्मरणपद (Recall) ।

(2) प्रत्याभिज्ञान या पहचान पद (Recognition) ।

(1) पुनः स्मरण पद--

(i) सरल पुनः स्मरण पद--इसमें उत्तर एक शब्द या छोटे वाक्य में दे सकता है । जैसे--भारत के प्रधान मंत्री का नाम, आगरा किस लिए प्रसिद्ध है ?

(ii) रिक्त स्थान की पूर्ति पद--इसमें किसी कथन से सम्बन्धित कोई महत्वपूर्ण शब्द रिक्त छोड़ दिया जाता है जिसे बालक पूरा करता है जैसे--महात्मा गांधी का जन्म..... नामक स्थान में हुआ ।

(2) प्रत्याभिज्ञान या पहिचान

(i) सत्य/असत्य अथवा विकल्प प्रत्युत्तर पद--(True/false or alternate response type item)

इसमें हां/नहीं या सत्य/असत्य लिखा होता है । इसमें जो कथन के साथ उपयुक्त हो उन्हें (✓) लगा देना होता है ।

(1) राम चरित मानस की रचना गोस्वामी तुलसीदास ने की है । सत्य/असत्य ।

(2) महामना मदन मोहन मालवीय वाराणसी में पैदा हुये ।

हां/नहीं ।

(ii) बहुवैकल्पिक पद--( Multiple choice items ) इस प्रश्न का प्रचलन अधिक है । इसमें एक प्रश्न के चार या पांच उत्तर दिये होत हैं इसमें एक सही होता है तथा संकेत दिया होता है ।

संकेत--सही के सामने (✓) चिन्ह लगाइये । भारत के प्रथम राष्ट्रति थे ।

(क) डा० राधाकृष्णन ।

(ख) डा० राजेन्द्र प्रसाद ।

(ग) डा० वी० वी० गिरि ।

(घ) डा० जाकिर हुसैन ।

(iii) तुल्यपदीय ( Matching items )--प्रश्नों में किसी घटना या वस्तु के गुण के सम्बन्ध में शब्दों प्रतीकों या वाक्यांशों के दो स्तम्भ दिये होते हैं जो एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं पर दोनों पदों में इनका स्थान अव्यवस्थित होता है । इन प्रश्नों के सम्भावित उत्तरों की संख्या भी अधिक होती है । एक स्तम्भ के प्रत्येक पद को दूसरे पद से मिलान करके क्रम से रखना पड़ता है ।

(iv) समूह या वर्गीकरण पद ( Group or classification item)--इसमें कुछ प्र तीक दिये ह ते हैं जो किसी गुण के आधार पर परस्पर सम्बन्धित होते हैं । बालक को असंबंधित प्रतीक या शब्द छांट कर लगा देना होता है ।

निम्न में से एक शब्द उस वर्ग का नहीं है ।

(1) राम-शीला, गंगा पहाड़, इलाहाबाद ।

(2) राम, मोहन, राधे, कुमुद, सोहन ।

समन्वित रूप--

इसमें निबंधात्मक प्रकार के प्रश्नों के दोषों को बहुत कुछ वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्नों द्वारा दूर कर लिया गया है । परन्तु इनके द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति के परीक्षण की उपेक्षा हो जाती है । अतः प्रश्न-पत्रों को दोषों से मुक्त करने तथा ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित सभी मानसिक योग्यताओं के परीक्षण के लिए ऐसे प्रश्नों की रचना हो जाती है जिनमें निम्नलिखित प्रकार के प्रश्न रखे जाते हैं ।

(1) अति लघुत्तरीय प्रश्न ।

(2) लघुत्तरीय प्रश्न ।

(3) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न ।

मौखिक--

कक्षा शिक्षण में मौखिक प्रश्नों का प्रयोग करना आवश्यक है किन्तु किसी अवधि या वार्षिक परीक्षाओं के रूप में इनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। किसी विषय में छात्र की योग्यता के मापन के लिए अथवा अंक प्रदान करने के लिए मौखिक परीक्षणों का प्रयोग सर्वदा आत्मनिष्ठ एवं आत्मविश्वसनीय होगा। व्यक्तिगत परीक्षण, वाद-विवाद प्रतियोगिता एवं विदेशी भाषा उच्चारण आदि के लिए मौखिक परीक्षा की उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध है।

दोष--

(1) सभी को समान रूप से न्याय नहीं मिलता।

(2) पूर्णता तथा प्रभाव शीलता के आधार पर परीक्षण नहीं हो पाता।

(3) पक्षपात।

(4) समय अधिक लगता है।

उपयोग--साक्षात्कार P.C.S. में होता है।

निरीक्षण विधि (Observation Method)--

इस विधि के द्वारा छात्रों के विभिन्न व्यवहारों, क्रियाओं, संवेगात्मक एवं बौद्धिक परिपक्वता सामाजिक व्यवस्थापन आदि का क्रमबद्ध रूप से निरीक्षण किया जाता है। इसके अतिरिक्त छात्रों की आदतों एवं कुशलताओं के विकास की परख करने में भी यह विधि लाभदायक सिद्ध होती है।

यदि निरीक्षण सतर्कता एवं नियमित रूप से किया जाय तो उनके विषय में निर्णय करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है। भूगोल, इतिहास परिवेश के संदर्भ में इस विधि की उपयोगिता अधिक है।

अभिलेख (Records)--

छात्रों की डायरियों, शिक्षकों के द्वारा निर्मित किए गए घटनाओं के विवरण पत्र-एवं संचित अभिलेख पत्र भी मूल्यांकन की प्रमुख विधियां है। यह छात्रों की डायरियां एवं उनकी रुचियों, वृत्तियों, दृष्टिकोण एवं उनकी व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालती है।

शिक्षक द्वारा निर्मित किये गये विवरण पत्र द्वारा छात्रों के द्वारा भावावेश की दशा में तथा कारणवश किये गये व्यवहार का पता लगता है। संचित अभिलेख पत्रों द्वारा छात्रों की विभिन्न दशाओं में हुई प्रगति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

5--1 अच्छे परीक्षण के गुण--

परम्परागत एवं नवीन परीक्षणों का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात हुआ कि उनमें सुधार की आवश्यकता है। सुधार के अनुसार अच्छे परीक्षण में निम्नलिखित गुणों का समावेश होना चाहिये।

1--विश्वसनीयता (Reliability)।

2--वैधता (Validity)।

3--प्रभेदकता (Discrimination)।

4--व्यवहारिकता (Practicability)।

5--तुलनात्मकता (Comparability)।

6--उपयोगिता (Utility)।

विश्वसनीयता--किसी परीक्षण की विश्वसनीयता उसके द्वारा किसी भी योग्यता की सततता के साथ मापित किये जाने पर निर्भर होता है।

The reliability of a test depends upon the consistency with which it gang s abilities of those to whom it has been applied.

सततता का अर्थ है कि किसी कक्षा या वर्ग की एक बार परीक्षा लेने पर जो फल प्राप्त हो, लगभग वही फल उसी परीक्षण से अथवा वैसे ही अन्य परीक्षण से परीक्षा लेने पर दुबारा भी प्राप्त हो। अविश्वसनीय परीक्षणों में एक छात्र को एक बार अच्छे अंक प्राप्त हो सकते हैं, दुबारा उसी परीक्षण में खराब अंक भी प्राप्त हो सकते हैं। विश्वसनीयता इस बात पर निर्भर होती है कि उसके द्वारा उसकी योग्यता का मापन हो रहा है जिसका मापन करना परीक्षा निर्माता का उद्देश्य है। यदि उस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती किन्तु जो परिणाम पहली बार मिला तथा उसमें सततता है तो परीक्षण विश्वसनीय कहा जायगा।

विश्वसनीयता के आधार--परीक्षण की सततता निम्न दो बातों पर निर्भर करती है।

1--पर्याप्त न्यादर्शीकरण--

कोई भी परीक्षण ऐसा नहीं हो सकता जिससे पाठ्यक्रम के सभी अंगों का एक साथ परीक्षण किया जा सके। परीक्षा निर्माता को यह ध्यान रखना होगा कि प्रश्न-पत्र में जितने अधिक प्रश्न होंगे उतने अधिक अंश के परीक्षण का अवसर होगा। छात्र का परीक्षण पाठ्यक्रम के अधिकांश भाग से हो सकेगा। अतः प्राप्तांकों के सततता प्राप्तांकों के न्यादर्शीकरण पर निर्भर करती है।

2--जांचने में वस्तुनिष्ठता--

सतता का आधार जांचने में वस्तुनिष्ठता है। प्रश्न-पत्र ऐसा हो कि उसको चाहे जितनी बार मूल्यांकन किया जाय प्राप्तांक में कोई हेर-फेर न हो या उसी उत्तर-पुस्तिका को दो या तीन परीक्षकों से अलग-अलग मूल्यांकित कराने पर प्राप्तांक वही आवे। मूल्यांकन में अध्यापक की आत्मनिष्ठता भी आवश्यक है। अतः मूल्यांकन इस प्रकार का हो कि परीक्षक की आत्मनिष्ठता का कोई प्रभाव न पड़े।

विश्वसनीयता की माप चार विधियों द्वारा कर सकते हैं--

1--परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि।

2--विकल्प या समानान्तर प्रतिरूप विधि।

3--अर्ध विच्छेदन विधि।

4--युक्ति-युक्त पद साम्य विधि।

**वैधता--**

किसी परीक्षण की वैधता का तात्पर्य है कि वह उस योग्यता का ठीक-ठीक मापन करता है जिसका मापन करने के लिए वह बनाया गया है।

"The validity of a test depends upon the fidelity with which it measures whatever it purport to measure", carrett.

पर्याप्त न्यादर्शीकरण + वस्तुनिष्ठता → विश्वसनीयता

विश्वसनीयता + प्रासांगिकता → वैधता

प्रासांगिकता का अर्थ उद्देश्य निष्ठता से है अर्थात् वह परीक्षण जिस उद्देश्य के लिए बना है उसकी पूर्ति कर रहा है।

वैधता के अन्तर्गत निम्न दो अंगों का होना आवश्यक है--

1--अंतर्वैधता।

2--बाह्य वैधता।

अंतर्वैधता--परीक्षण की वैधता के लिए हमें यह देखना पड़ता है कि परीक्षण जिस उद्देश्य से बनाया गया है उसकी पूर्ति हो रही है या नहीं। परीक्षण की अंतर्वस्तु में परीक्षण की वैधता के लिए हमें प्रामाणिक स्रोतों से सहायता लेनी पड़ती है। इनमें से कुछ निम्न हैं--

(i) पाठ्यपुस्तकें (ii) राष्ट्रीय समितियों की आख्यायें तथा विषय व परीक्षण से सम्बन्धित विशेषज्ञों के लेख (iii) उद्देश्यों का स्थानीय निर्धारण (iv) वार्षिक परीक्षाओं के प्रश्नों का विश्लेषण।

बाह्य वैधता--बाह्य वैधता के लिए परीक्षण के परीक्षाफलों की तुलना अन्य प्रामाणिक परीक्षण के फलों से की जाती है। वैधता गुण के निकालने के लिए जिन प्रामाणिक निकषों का प्रयोग किया जाता है वे निम्नवत् हैं--

(i) विद्यालय प्राप्तांक (ii) कोई अन्य प्रामाणिक या मानवीकृत परीक्षण (iii) भावी परिणाम।

प्रभेदकता--यदि कोई परीक्षण छात्रों की योग्यताओं का सही-सही मापन करता है तथा इस आधार पर उनमें प्रभेद स्पष्ट कर देता है तो उस परीक्षण में प्रभेदकता शक्ति होती है। प्रभेदकता के लिए परीक्षण में निम्न दो बातों का होना आवश्यक है--

(i) प्रश्नों की दुरूहता--इसको निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है।

$$ID = \frac{Ni}{NE} \times 100$$

यहां पर ID--प्रश्न की दुरुहता

Ni--प्रश्न को शुद्ध करने वाले छात्रों की संख्या

NE--कुल परीक्षार्थियों की संख्या।

उक्त सूत्र के अनुसार 40 प्रतिशत से 60 प्रतिशत दुरुहता वाले प्रश्न वैध माने जाते हैं।

(ii) अंतर स्पष्टता शक्ति--जिस परीक्षण के प्रश्नों द्वारा किसी कक्षा या वर्ग के तीव्र एवं कमजोर छात्रों में अंतर स्पष्ट हो जाता है वह अंतर स्पष्टता की शक्ति से वैध समझा जाता है। मान लो किसी कक्षा के 8 तीव्र, 6 औसत 2 दुर्बल छात्र किसी प्रश्न को कर पाते हैं तो वह प्रश्न वैध होता है।

व्यावहारिकता--किसी परीक्षण की व्यावहारिकता की परख के लिए उसमें निम्नलिखित विशेषताओं का होना आवश्यक है--

(i) प्रबन्धकीय सुविधा--परीक्षण प्रबन्ध की दृष्टि से सरल हो जिससे उसका प्रबन्ध ठीक से हो सके। परीक्षार्थी उसे स्पष्ट रूप से समझ सकें।

(ii) जांचने में सुविधा--उत्तम परीक्षणों में सरलता, शीघ्रता एवं शुद्धता पूर्वक जांचने की सुविधाएं रहती हैं। जांचने के निर्देश व हल निश्चित होते हैं जिससे वस्तुनिष्ठता पूर्वक जांचने में शीघ्रता होती है।

(iii) आर्थिक सुविधा--परीक्षण संचालन करने में अधिक खर्चीला न होना चाहिये। कम से कम खर्च में अधिक से अधिक छात्रों की परीक्षा हो सके।

तुलनात्मकता--तुलनात्मकता से तात्पर्य है कि किसी परीक्षा प्राप्तांकों को देखकर किसी छात्र की योग्यता के स्तर को समझा जा सके। इसके लिए परीक्षणों में मानक का होना आवश्यक है। इसके किसी शिक्षण अवधि के पूर्व तथा पश्चात् छात्रों की योग्यता की तुलना की जाती है।

उपयोगिता--सभी आवश्यक लक्षणों के होते हुये भी कोई परीक्षण तब तक वैध नहीं कहा जा सकता है जब तक कि स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं की दृष्टि से उपयोगिता सिद्ध न हो जाय। उपयोगिता परीक्षण का अंतिम तथा सर्वोच्च माप दण्ड है। किसी परीक्षण को प्रयोग करने के कुछ उद्देश्य तथा आवश्यकताएं होती है और यदि इन उद्देश्यों तथा आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो उस परीक्षण को कभी भी एक उत्तम परीक्षण नहीं कह सकते।

## अच्छे प्रश्न-पत्र के गुण

शिक्षा की समस्त प्रणालियों में प्रश्नों का बड़ा महत्व है । किसी भी परीक्षण में ज्ञान, बोध, अनुप्रयोग तथा कौशल की उपलब्धि ज्ञात करने के लिए ऐसे प्रश्न बनाये जाते हैं जिनमें विश्वसनीयता, वैधता, प्रभेदकता, दुरूहता आदि गुणों का समावेश हो । इसके लिए प्रश्नों में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है :

1--उद्देश्य निष्ठता--एक अच्छा प्रश्न वह कहा जायेगा जो छात्र में उत्पन्न होने वाले व्यावहारिक परिवर्तन का मूल्यांकन कर सके तथा शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति हो सके । प्रश्न द्वारा यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि किस शैक्षिक उद्देश्य, ज्ञान, बोध, अनुप्रयोग, कौशल, भावात्मक आदि की पूर्ति हो रही है ।

2--वस्तुनिष्ठता--प्रश्नो के उत्तर निश्चित होने चाहिये । उनको चाहे जो परीक्षक चाहे जब जांचे प्राप्तांकों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये । परीक्षण में प्रश्न का रूप अन्तर्वस्तु के अनुकूल रखना चाहिये । प्रश्नों की वस्तुनिष्ठता में निम्नलिखित तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(क) उत्तरों में समरूपता--प्रश्न कभी ऐसे न बनावे जायं जिनमें एक से अधिक शुद्ध उत्तर हो सके । परीक्षणों में ऐसे बहुत्तरीय प्रश्न को रखने से जांचने में वस्तुनिष्ठता नहीं आ सकती क्योंकि ऐसी दशा में परीक्षक को स्वयं निर्णय करके अंक प्रदान करना पड़ता है ।

(ख) पकड़ वाले शब्दों एवं अन्य संकेतों से बचत--प्रश्न में ऐसे शब्दों या संकेतों को नहीं रखना चाहिये जिनसे शुद्ध उत्तर का अनुमान लगाने में परीक्षार्थी को सहायता मिल सके ।

(ग) प्रश्नों के अर्थ की स्पष्टता--प्रश्न की भाषा ऐसी रखनी चाहिये जिससे अर्थ समझने में किसी प्रकार की संदिग्धता न आने पाये । अर्थ स्पष्ट होने से शीघ्रतापूर्वक निश्चित उत्तर दिया जा सकता है । संक्षेपतः प्रश्नों की शब्दावली सरल, स्पष्ट और निश्चित होनी चाहिये ।

3--दुरूहता का स्तर--प्रश्नों की दुरूहता का स्तर भी निश्चित होना चाहिये । प्रश्न कठिन, सामान्य तथा सरल स्तर में विभक्त होने चाहिये । प्रश्न-पत्र में तीन प्रकार के प्रश्नों का समावेश होना चाहिये । दुरूहता स्तर निश्चित करने में छात्रों की वय, परिपक्वता तथा मानसिक स्तर का ध्यान रखना अपेक्षित है ।

उपर्युक्त गुणों को ध्यान में रखते हुये निम्नलिखित प्रकार के प्रश्नों का निर्माण होना चाहिये--

(1) लघुत्तरीय ।

(2) अति लघुत्तरीय ।

अ--रिक्त स्थान की पूर्ति ।

ब--सत्यात्य विवेचन ।

स--बहु संख्यक विवेचनात्मक प्रश्न ।

द--समन्वयात्मक प्रश्न ।

(3) दीर्घ उत्तरीय या निबन्धात्मक प्रश्न ।

वर्तमान समय में शिक्षा विभाग उत्तर प्रदेश ने हाई स्कूल स्तर पर गणित एवं विज्ञान विषयों में इस प्रकार के प्रश्न का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है । अन्य विषयों में भी प्रयोग स्वरूप एक या दो प्रश्नों का निर्माण किया जाता है ।

## बी० टी० सी० पाठ्यक्रम चतुर्थ प्रश्न-पत्र

## (प्राथमिक शिक्षा की समस्याएं एवं अभिनव प्रवृत्तियां एवं शैक्षिक मूल्यांकन)

### कुछ आवश्यक प्रश्न

1--शिक्षा का सार्वजनीकरण--

1--शिक्षा सार्वजनीकरण के विभिन्न कारक कौन से हैं ? इस दिशा में राज्य सरकार ने क्या कदम उठाए हैं ?

2--ह्रास अवरोध की समस्या का निवारण किस सीमा तक हुआ है ? इसके पूर्ण निवारण म किन बाधाओं का सामना करना पड़ता है ?

3--निर्बल वर्ग एवं अपवंचित वर्ग की शिक्षा की समस्याओं को किस प्रकार दूर किया जा सकता है ? इसके लिये शिक्षा आयोग ने कौन-कौन सुझाव दिये हैं ?

4--राज्य में बालिका शिक्षा की दशा इतनी दयनीय क्यों है ? राज्य सरकार इसकी प्रगति की दिशा में क्या कार्य कर रही है ?

5--समस्या मूलक बालकों से क्या अभिप्राय है ? अध्यापक बालकों की विभिन्न प्रकार की समस्याओं का निवारण कहां तक कर सकता है ?

6--शिक्षा के सार्वजनीकरण की दिशा में अनौपचारिक शिक्षा का महत्व सर्वोपरि है ? इसे स्पष्ट कीजिए ।

7--लोगों को साक्षर बनाने में प्रौढ़ शिक्षा कहां तक सहायक सिद्ध हुई है ?

8--विज्ञान शिक्षा के मार्ग में क्या बाधाएं हैं ? इसे किस प्रकार अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है ?

9--बालकों के स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी योजनाएं क्या हैं ? इनसे स्वास्थ्य में कहां तक सुधार का लक्ष्य प्राप्त हो सका है ?

2--राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता--

1--राष्ट्र में भावात्मक एकता किस प्रकार लाई जा सकती है इसमें शिक्षक क्या भूमिका निभा सकता है ?

2--क्या नैतिक शिक्षा से राष्ट्र में भावात्मक एकता में सहायता मिल सकती है ? और कहां तक ?

3--विद्यालय स्तरीय सस्मया--

1--उन भौतिक समस्याओं का उल्लेख कीजिए जो शिक्षा के मार्ग में बाधक हैं ? इसके निवारणार्थ राज्य सरकार क्या कर रही है ?

2--छात्र अनुशासन हीनता के क्या कारण हैं ? इसे दूर करने के उपाय तुम्हारी दृष्टि में क्या हैं ?

4--प्रशासनिक समस्यायें--

1--छात्र अनुपात के असंतुलित होने से क्या हानियां हैं ? शिक्षा विभाग ने इसके निवारण के लिये कौन सी नीति अपनाई है ।

2--शिक्षा के गुणात्मक विकास में वृहत् कक्षा शिक्षण अथवा बहु कक्षा शिक्षण कहां तक बाधक है ? इसके विचारणार्थ क्या प्रयास किये जा सकते हैं ?

3--निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण में क्या अन्तर है ? शिक्षा की प्रगति हेतु दोनों में किसकी उपयोगिता है और क्यों ?

4--शिक्षण के अतिरिक्त अध्यापक को अन्य कौन-कौन से कार्य करने पड़ते हैं ? क्या इससे उचित शिक्षण में बाधा पड़ती है ? इसका कहां तक सम्भव है ?

5--शिक्षण प्रशिक्षण की समस्यायें--

1--शिक्षण प्रशिक्षण की समस्याओं का उल्लेख करो । अध्यापक प्रशिक्षण का वर्तमान स्वरूप क्या है ?

2--पत्राधारित प्रशिक्षण शिक्षा के वर्तमान संदर्भ में क्यों आवश्यक हो गया है ? इसमें कहां तक एकरूपता मिल सकती है ?

3--शिक्षण प्रशिक्षण में विभिन्न प्रकार के विशिष्ट संस्थाओं की भूमिका का उल्लेख करो ?

6--शैक्षिक संकल्पनाएं एवं सुधार योजनाएं--

1--शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु वर्तमान सुधार योजनाएं क्या हैं ? पठन सामग्री की रचना में किन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है ?

2--न्यूनतम क्रमोत्तर अधिगम किसे कहते हैं ? यह छात्रों की सीखने की प्रक्रिया में किस सीमा तक सहायक सिद्ध हो सकती है ?

3--शिक्षा में परिवेशीय अध्ययन का क्या तात्पर्य है तथा इसका क्या महत्व है ?

4--शिक्षा में समाजोपयोगी उत्पादक शिक्षा का क्या महत्व है ? इसकी क्या समस्या है ?

5--"प्राथमिक शिक्षा में जनसंख्या एक समस्या है।" व्याख्या करो ।

6--शिक्षा में अधिगम संस्थितियों तथा अधिगम सिद्धान्त का प्रयोग कहां तक उपयुक्त है ?

7--आधुनिक शिक्षा में शिक्षा प्रौद्योगिकी की क्या भूमिका एवं महत्व है ? क्या इससे शिक्षा में अपेक्षित सुधार किया जा सकता है ?

7--अभिनव प्रवृत्तियां--

1--शिक्षा की अभिनव प्रवृत्तियों का वर्णन करो ।

2--निवर्गशाला योजना प्राथमिक शिक्षा में कहां तक उपयोगी है ?

'शैक्षिक मूल्यांकन' पर कुछ प्रश्न--

1--शैक्षिक मूल्यांकन क्या है ? मूल्यांकन की क्या आवश्यकता है ?

2--मूल्यांकन और मापन में क्या अन्तर है ? मूल्यांकन के विविध क्षेत्रों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिये ।

3--शैक्षिक प्रक्रिया में कौन-कौन से पद आते हैं ? उनके पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए ।

4--शैक्षिक मूल्यांकन के कौन-कौन से पक्ष हैं ? संज्ञानात्मक क्षेत्र के विभिन्न स्तरों का संक्षिप्त विवरण दीजिये ।

5--भावात्मक तथा कौशलात्मक क्षेत्र द्वारा किन तथ्यों का मूल्यांकन किया जाता है ? भावात्मक क्षेत्र के विभिन्न सोपानों का संक्षिप्त टिप्पणी सहित उल्लेख कीजिये ।

6--निबन्धात्मक परीक्षाओं के मुख्य दोषों का उल्लेख कीजिये। उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है ?

7--वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के मुख्य गुणों की विवेचना कीजिये। निबन्धात्मक परीक्षणों से ये किन अर्थों में उत्तम कहे जा सकते हैं ?

8--उत्तम परीक्षणों की कौन-कौन सी मुख्य विशेषताएं हैं ? प्रत्येक विशेषता पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए।

9--किसी परीक्षा की 'विश्वसनीयता' तथा 'वैधता' से क्या समझते हैं ? इन्हें किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ?

10--अच्छे प्रश्नों की मुख्य विशेषतायें लिखिये। किन्हीं दो प्रश्नों को लिखिये जिन्हें आप अच्छा समझते हैं, और स्पष्ट कीजिये कि वे क्यों अच्छे हैं ?

संदर्भ पुस्तकें (प्रारम्भिक शिक्षा की समस्यायें तथा अभिनव प्रवृत्तियां)


| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक का नाम | प्रकाशक का नाम |
|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 |
| 1 | अच्छी शिक्षा की ओर | बख्शी, डा० गोवर्धन लाल | राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली 1925। |
| 2 | भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें | रस्तोगी, के० जी० | रस्तोगी पब्लीकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ 79-80। |
| 3 | शिक्षा के नये प्रयोग | सूरजभान | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। |
| 4 | शिक्षा दर्शन की प्रमुख प्रवृत्तियां एवं सामंजस्यवाद | व्यास, डा० रामनारायण | सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, 64 नया बंहराना, इलाहाबाद 73। |
| 5 | भारतीय शिक्षा की समस्यायें | दीक्षित, उपेन्द्रनाथ जोशी, दिनेश चन्द्र | राजस्थान बुक स्टोर्स, उदयपुर। |
| 6 | भारतीय शिक्षा की सामयिक समस्यायें | चौधरी, राम खिलावन उपाध्याय, राधा वल्लभ | विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। |
| 7 | शिक्षण की समस्यायें | सम्पादक-टेलर, हैराल्ड | राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली-6। |
| 8 | भारतीय शिक्षा की समस्या | पाण्डेय, सिंह आर्य | लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक भण्डार, आगरा-3। |

| 1 | 2 | 3 | 4 |
|---|---|---|---|
| 9 | भारतीय शिक्षा को समस्यायें | सिंघल, महेश चन्द्र | हिन्दी ग्रंथ अकादमी, राजस्थान। |
| 10 | स्वतंत्र भारत में शिक्षा की समस्याएं | अग्रवाल, जी० सी० | आर्य बुक डिपो, दिल्ली। |
| 11 | शिक्षक प्रशिक्षण के सिद्धान्त एवं समस्याएं प्रथम तथा द्वितीय खण्ड | मेहता चतर सिंह जोशी, दिनेश चन्द्र | राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर। |

## शैक्षिक मूल्यांकन--संदर्भ पुस्तकें

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक का नाम | प्रकाशक का नाम |
|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 |
| 1 | शैक्षिक परीक्षण | गैरेट् हेनरी, ई | यूरेशिया पब्लिकेशन हाउस प्राई० लि०, रामनगर, नई दिल्ली। |
| 2 | शैक्षिक मापन ( परीक्षण ) भाग 1 | तिवारी, आदित्य नारायण | राम नारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद। |
| 3 | शैक्षिक मापन ( सांख्यिकी ) भाग-2 | तदेव | तदेव |
| 4 | आधुनिक शिक्षा में मूल्यांकन | जे० वे न० राई स्टोन जस्टमेन जोसेफ, राबिन्स टर्चिव | यूरेशिया पब्लिकेशन हाउस प्राई० लिमि० रामनगर, नई दिल्ली। |
| 5 | नैदानिक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण | भट्ट, डा० चन्द्र शेखर, शर्मा रामदत्त, वयर्ता, जमुना लाल | राजस्थान प्रकाशन, त्रिपौलिया बजार, जयपुर-2। |
| 6 | शिक्षा मनोविज्ञान के तत्व | स्कीनर, सी० ई० अनुवादक शेरी, श्रीमती जे० पी० आदि | उ० प्र० हिन्दी ग्रंथ एकादमी उ० प्र०, लखनऊ। |
| 7 | शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन | भार्गव महेश | आगरा। |
| 8 | शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन | वर्मा, रामपाल | आगरा। |

संदर्शिका सृजन हेतु आयोजित कार्यशालाओं के प्रतिभागीगण

1—श्रीमती हमीदा अजीज ।

2—श्री अब्दुल मालिक ।

3—श्री राम चरित्र मिश्र ।

4—श्री अनन्त राम मिश्र ।

5—श्री कुमारी गोबिन्द आनन्द ।

6—श्रीमती कृष्णा कुमारी श्रीवास्तव ।

7—श्री जगमोहन सिंह ।

8—श्री कंचन लाल सत्यार्थी ।

9—श्री देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव ।

10—श्री आनन्द बिहारी ।

11—श्री कुंवर देवेन्द्र प्रताप सिंह ।

12—श्रीमती रेखा श्रीवास्तव ।

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B,SriAurbindo Marg,New Delhi-110016
LOC. No. 356
Date 28/8/82

NIEPA DC
D00350

पी० एस० यू० पी० —29 शिक्षा—3—9—81—1,000 (पी० डी०)